प्रवृति में निवृती

अगर आप हर एक प्रवृत्ति में अपने को निवृत्ति रूप में देखना चाहते हैं तो इस पुस्तक के विचारने से आपको कर्म में अकर्मणता, भेद में अभेदता, और विक्षेप में समता का गोप्य रहस्य अपने आत्मा में प्रत्यक्ष अनुभव होने लगेगा।

———o———

श्री परम आनन्द भण्डार

पो० कनखल (हरिद्वार)
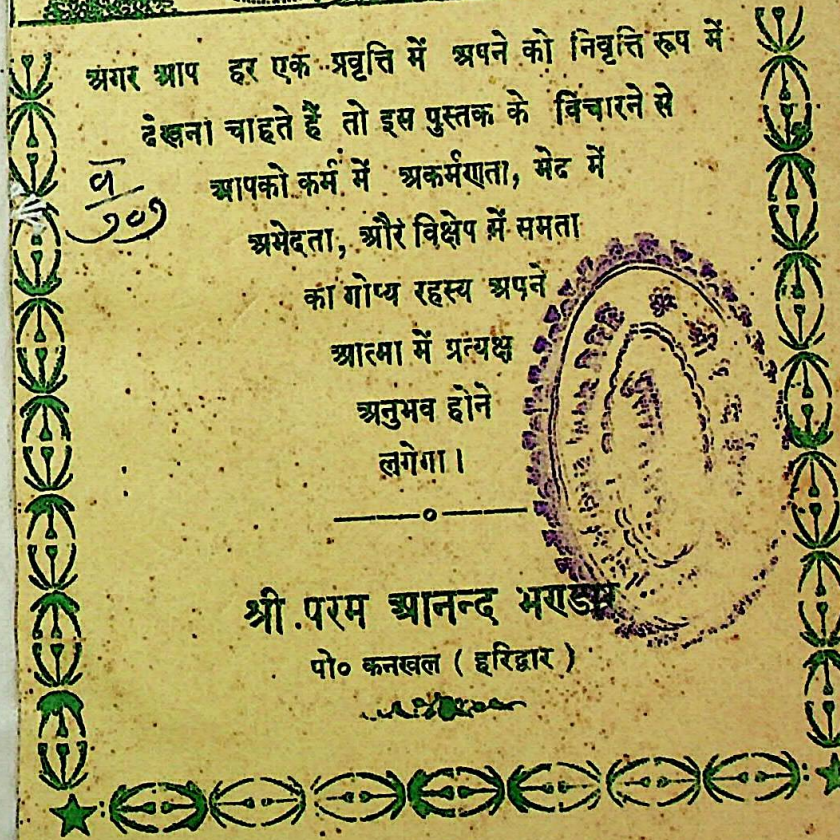
ब्रह्मदेव नारायण त्रिपाठी
आदर्श राजनैतिक, धार्मिक
एवं सामाजिक प्रचारक

त्रिपाठी विश्राम कुटीर,
ग्रा. रईशे, पो. भगवतीपुर-
करमौर (पटना)।

★ सफलता का संदेश ★

मैं संसार में पैदा हुआ इसकी मुझे खुशी है, कितने
दुःख कष्ट सहने पड़े उन कर भी मैं
प्रसन्न हूँ अनेक संयोग वियोग
आए और गए उनसे
भी आनन्द
मिला
है।
आज जो
अखंड एकता का
अनुभप कर रहा हूँ इसी
सफलता को मैं किसी से भी कम
नहीं समझता, अगर मेरे को दुनियाँमें और
भी रहना पड़ा तो किसी विशेष लाभ के लिये
नहीं, न किसी कमी पूरी करने के लिये। क्योंकि मेरा
वास्तविक स्वरूप नित्य तृप्त और कृत्य २ अनुभव हो रहा
है, जिसे प्रकृति की प्रवृत्ति व निवृत्ति छू नहीं सकती ॥ ॐ ॥

—o—

प्रवृत्ति में निवृत्ति

रचियता और प्रकाशक
आत्म दर्शी

श्री सत्चित् परमानन्द, भण्डार
पो० कनखल (हरिद्वार)

★★★

Resolve to be thyself, and know that he, who finds himself loses his misery.

दूसरा संस्करण १५००] [मूल्य ०.७५ नये पैसे
नवम्बर १९६२ श्री वर्षीमहोत्सव [४०]

विषय-सूची

आज

वर्तमान समय में विशेष कर हर एक मनुष्य का चित्त प्रवृति को ओर आकर्षित हो रहा है। चाहे हम सारा दिन शरीर मन इन्द्रियों से कोई न कोई कर्म करते रहते हैं, तो भी देश के लिऐ विदेशों से बड़ीर मशीने मंगाई जारही हैं कि जैसे हम अपने जरूरतों का सामना कर सकें। इससे ज्ञात होता है कि यह प्रवृति ही का युग है। परन्तु हमारा मुख्य उद्देशय यह होना चाहिये। कि हम प्रवृति में रहते हुए अपने को निवृति याने निर्लेप नेशोक रूप में अनुभव करें। साधारण लोग प्रवृत्ति में अपने ही आसक्ती वश अनेक कामनाओं में फँस जाते हैं। इस लिये मनुष्य को प्रवृत्ति में अपने निवृत्ति स्वरूप आत्म ज्ञान की परम आवश्यकता है, नहीं तो शरीर, मन, इन्द्रियों के प्रवृत्ति रूपी जाल से कभी भी हम छूट नही सकते। ऐसे भारी बन्धन से मुक्त होने के लिए यह प्रवृत्ति में निवृत्ति नामा अमोल पुस्तक प्रिय पाठको के लाभार्थ प्रकाशित किया जा रहा है। कितने सज्जन यह सुन कर बड़े विस्मय को प्राप्त होंगे कि हम प्रवृत करते हुए अपने को निवृत्ति रूप में कैसे अनुभव कर सकते हैं। वेदांत कहता है कि आपके अति समीप शरीर मन इन्द्रियों से लेकर अभिमान प्रयन्त जो भी प्रवृत्ति हो रही है, आप उनसे निराले सदा साक्षी रूप में स्थित रहते हैं। अपने निज निवृत्ति स्वरूप के साक्षात किये विना कोई भी सिर्फ बाहर के प्रवृत्ति को छोड़ कर अत्यन्त निवृत्ति रूप में रह नही सकता। क्योंकि आंखों की पलकों का हिलना, प्राणों का आना जाना, अथवा हाथ पांवों का चलना फिरना, कोई भी बन्द नहीं कर सकता। इस लिये

गीतां में केवल बाहर से प्रवृत्ति रोकने वाले को हठ धर्मी कहा गया है। अर्जुन युद्ध की प्रवृत्ति से घबराया हुआ अपने क्षत्री कर्म को छोडना चाहता था, परन्तु गीता ज्ञान से वह जाग उठा, और भगवान को कहा कि अब जो आप कहेंगे वह मैं करने को तैयार हूँ। क्योंकि गीता श्रवण करने से उसे अपने निवृत्ति स्वरूप आत्मा का ज्ञान हो चुका था।

जैसे रथ का सारा बोझ पृथ्वी पर समझ कर रथ के चलाने वाला घोड़ों की बाग डोर अपने हाथों में रख कर असली लक्ष पर पहुँच जाता हैं। वैसे आप भी इस पुस्तक के यथार्थ सिद्धान्त को समझ कर अपने प्रवृत्ति का सारा बोझ प्रकृति पर रख कर नित्य निवृत रूप जो साक्षी स्वरूप तुम्हारा आत्मा है। उस स्वरूप के निश्चय को बढ़ा कर अपना जीवन मुक्ती का लक्ष इस वर्तमान समय में प्राप्त करें।

ओ३म् आनन्द

—श्री सत्‌चित परमानन्द

❀ आत्मदर्शी ❀

श्री सत्‌चित परमानन्द साहिब ।

❀ श्रीगुरू परमात्मने नमः ❀

प्रवृत्ति में निवृत्ति

चिदाकाश निर्मल सदा, पूरण परमानन्द ।
नित्य उपलब्ध स्वरूप मम, श्रीगुरू न संशय गंध ॥

—❀—

अगम पन्थ की महिमा भारी,
कबहुँ न उतरे सहज खुमारी ।
प्रवृत्ति न निवृत्ति, तृप्ति न अतृप्ति,
समझन की मत जीतन हारी ॥
उन मन पुरुष मिल्या घट भीतर,
जासों प्रीति लगी अति प्यारी ।
जहां कुछ नाहीं तहां कुछ पाया,
सत्गुर साहिब ते बलिहारी ॥

❀ ❀ ❀

प्रवृत्ति में निवृत्ति, कर्म में अकर्मण्यता, भेद में अभेदता और शून्य में चेतनता का गोप्य रहस्य आप को अन्तरात्मा के अनुभव से प्राप्त होगा ।

—०—

वेदान्त दर्शन के अनुसार मनुष्य के भीतर एक ऐसी अद्भुत सत्ता है जो प्रवृत्ति से परे, संयोग-वियोग से रहित और कारण कार्य भाव से स्वतन्त्र सदा अपने आप में स्थित है।

इस साकार संसार में जो भी अङ्ग आकार वाले पदार्थ प्रतीत हो रहे हैं, वे सभी आदि अन्त वाले हैं। जैसे यह शरीर, मन, इन्द्रियें और प्राण आदि अन्त वाले होने के कारण प्रवृत्ति रूप तथा कर्ता भोक्ता कहे जाते हैं और आपका अन्तरात्मा आदि अन्त से रहित नित्य तृप्ति निवृत्ति रूप, मन इन्द्रियें आदि के बीच में रहता हुआ भी अकर्ता अभोक्ता है। ऐसे अपने वास्तविक स्वरूप आत्मा का ज्ञान प्राप्ति कर आप बाहर से प्रवृत्ति में रहते हुए भी अपने को नित्य निवृत्ति अभोक्ता रूप में अनुभव कर सकते हैं। तब कहा है—

बाहर कर्ता भोक्ता, अन्दर एक न दो।
प्रवृत्ति में देखे निवृत्ति, जीवन मुक्त है सो ॥

वेदान्त कहता है, अगर आप सम्पूर्ण कर्म बन्धनों की निवृत्ति और नित्य सुख की प्राप्ति करना चाहते हैं तो अपने वास्तविक स्वरूप का ज्ञान प्राप्त करो। शरीर, मन, इन्द्रियों का ज्ञान तो एक मशीन के ज्ञान के समान है, जो आठों याम अपनी-अपनी प्रवृत्ति में सदा लगे रहते हैं और समय पर बद

लते चीण होते रहते हैं, परन्तु इन की आसक्ति में आया हुआ मनुष्य अपने को प्रवृत्ति रूप मान कर सर्वदा हर्ष शोक, राग, द्वेष और अभिमान आदि के अधीन हो कर अनेक कष्टों को झेलता रहता है। उदाहरणार्थ — किसी समय एक देश का महाराजा दूसरे देश पर अधिकार करने के लिए सेना साथ ले कर आप सुन्दर रथ पर आरूढ़ हो कर जा रहा था। रास्ते में नदी पार करते समय राजा की दृष्टि एक ब्रह्मानन्द में मग्न अवधूत पर जा पड़ी, जो निश्चिन्त नदी के किनारे पर विचर रहा था। महाराजा अपने लिए अच्छा शुभ लक्षण देख कर उस महापुरुष के आशीर्वाद पाने के लिए अपने रथ से उतर पड़ा। जब उन के चरणों में आ कर नमस्कार किया, तब अवधूत कहने लगा हे राजन! तुमने मुझे नमस्कार क्यों किया? यह वचन सुन कर राजा प्रथम तो आश्चर्य में पड़ गया और फिर सोच कर कहने लगा कि मैंने आप को नमस्कार इसलिये किया जो आप सभी सुखों की प्रवृत्ति को छोड़ कर इस भयानक वन में कष्टों को सहन कर रहे हैं। यह सुन अवधूत हंस कर बोला कि मैं भी तुम्हें दो बार नमस्कार करता हूं, क्योंकि तुम ही तो सुख छोड़ कर कष्टों को सहन कर रहे हो और अब भी अपने आराम को छोड़ कर सेना को साथ लेकर अनेक कठिनाइयों को झेलते हुये दूसरे देश के राजा और प्रजा को परेशान करने जा रहे हो। इसलिये अरमान किस का करना चाहिए और कष्टों में कौन है, तुम हो या मैं हूं? राजा महापुरुष के यथार्थ वचनों को सुन कर बड़ा विस्मय में आ गया। जब कुछ कह न सका, तब फिर अवधूत बोला कि अगर कोई अपूर्व मनुष्य हीरे और जवाहरों

के जड़े हुए महलों में रह रहा हो, उस में चारों ओर से स्वर्ग की हवाएं चल रही हों और खाने-पीने के लिये अमृत रस भरा हो, जिस की सब लोग जय जय पुकार रहे हों, तो क्या आप उसे मन्द भागी या दीन-दुखी कहेंगे ? राजा ने कहा कभी नहीं, वह तो बड़ा भाग्यशाली और मेरे से भी सौ गुना श्रेष्ठ तथा महा आनन्दमय कहा जायगा। फिर सत पुरुष ने पूछा, भला एक आदमी जो उसी सुन्दर महल से बाहर पड़े हुए कूड़े-कचड़े से अपने जीवन का निर्वाह कर रहा हो और रात को उस गन्दगी में आराम भी न मिलता हो तो क्या आप उसे बड़ा भाग्यशाली या सुखी सम्पत्तिवान मानेंगे ? राजा ने उत्तर दिया कि कभी नहीं, वो तो बड़ा मन्दभागी नरक जैसे दुखों में जीवन बिताने वाला है। तिस पर महापुरुष ने कहा कि बस, इतना ही तुम्हारे और हमारे जीवन में अन्तर है, क्योंकि मैं उसी निर्भय आत्म-साम्राज्य रूपी महल में किसी भी प्रवृत्ति से परे निश्चिन्त आनन्दमग्न रहता हूं और तू इस अनात्मरूप हाड-चाम की देह अध्यास रूपी गन्दगी के आसक्ति में घूम रहा है और मेरे साक्षी रूप मन्दिर में चारों ओर स्वर्ग से भी बढ़ कर समता रूपी वायु चल रही है और तेरे लिये चारों तरफ शोक चिन्ताएं राग द्वेष फिर रहे हैं। मैं सदा स्वयं प्रकाश ज्ञान अमृत को पान कर रहा हूँ और तू मन, इन्द्रियों के आधीन खरी-खोटी प्रवृत्तियों में कष्टों को झेलता हुआ विषय भोगों की चीकर में जीवन बिता रहा है। इतना दुखी देख कर मैं तुम्हें वारम्वार नमस्कार करता हूं। महापुरुष के मार्मिक वचनों को सुन कर राजा के चित्त को बड़ी चोट लग गई, उसने अपने सेनापति को बुला कर कहा कि

अब इस सारी सेना को वापस अपनी राजधानी में लौटा कर ले जाओ और मैं तब तक अपने राज्य में न लौटूंगा, जब तक इस महापुरुष की कृपा से सच्चे आत्म-साम्राज्य का पूर्ण विश्राम प्राप्त नहीं करूंगा। तत्पश्चात् महाराजा उस निर्जन स्थान पर श्रद्धा-सम्पन्न हो कर महापुरुष के वचनामृत का द्वारा पान करने लगा। तब कहा है—

प्रश्न परम सुन्दर, शिश, करे शंका धरे।
कैसे मिले कहां रहे, सुखशान्ति का सरोवर।
सहजे सत्गुर ने दिया, एन अभेद उत्तर।।
आत्म-साम्राज्य है घर, तिस घर में विश्राम कर।।

प्रश्न : हे भगवन् ! मैं ससार की सम्पत्ति सग्रह करने के अभिमानवश अनेक शुभाशुभ प्रवृत्तियों में फंसा रहा हूं और काम-क्रोध आदिकों के वश अतृप्त रहता हुआ अब बड़े निष्काम पुण्यों से मुझे आप का दर्शन लाभ हुआ है, कृपा कर मुझे कोई ऐसा निवृत्ति का मार्ग बताएं जिस से मैं सम्पूर्ण राज्य प्रवृत्ति का त्याग कर परम विश्राम को प्राप्त करूं ?

उत्तर : महापुरुष अपने उच्च कोटि के अनुभवी वचन कह रहे हैं कि हे राजन ! प्रवृत्ति में ही निवृत्ति का रहस्य छिपा हुआ है, खाली बाहर से चुप-चाप बैठे रहने का नाम निवृत्ति नहीं है। इसलिए तुम्हें अपने प्रवृत्ति में ही नित्य-निवृत्ति स्वरूप का अनुभव करना है।

प्रश्न : कई शास्त्र प्रवृत्ति की निन्दा क्यों करते हैं ?

उत्तर : वे इसलिये कि प्रवृत्ति में निवृत्ति के ज्ञान विना कहीं मनुष्य प्रवृत्ति में फिसल न जाए। सर्व शास्त्रों में श्रेष्ठ जो भगवत गीता है उस में भगवान् ने अर्जुन को विशेष कर प्रवृत्ति में निवृत्ति के ज्ञान का ही उपदेश दिया है। क्योंकि अर्जुन अपने क्षत्रि धर्म की प्रवृत्ति से अत्यन्त उपराम हो गया था।

प्रश्न : कई लोग थोड़ी प्रवृत्ति से भी हिचक कर कहते हैं कि हमें तो निवृत्ति में ही सुख मिलता है ?

उत्तर : महापुरुष मुस्कर कर कहने लगे कि जव तक मनुष्य किसी भी कार्य में प्रवृत्ति नहीं होता तव तक उसे निवृत्ति का लाभ कैसे हो सकता है, अर्थात् प्रवृत्ति से ही निवृत्ति का प्रश्न हल हो सकता है। जैसे मार्ग में खड़ा हुआ मनुष्य अगर एक पग भी आगे प्रवृत्ति न होगा तो उसी मार्ग को तय कर विश्राम घर में कव पहुँच कर निवृत्ति का सुख अनुभव कर सकेगा। भूखा मनुष्य भूख की निवृत्ति के लिए जव कोई प्रकार की प्रवृत्ति करता है तव ही तो निवृत्ति रूप तृप्ति को पाता है। इस से ज्ञात हुआ कि प्रवृत्ति के अन्दर ही निवृत्ति का सचा रहस्य प्राप्त होना है। तव कहा है —

करना अमल वेदान्त का, गीता में दस्तूर है।
प्रवृत्ति में जाने निवृत्ति, वो ज्ञान योगी शूर है ॥

निष्कामता के शान का, भारत को ही गरूर है।
नृलेपता नृपेक्षता; निजहर्षता में पूर है ।।

ॐ तत्सत् शान्ति ।।

जगत क्या है ?

प्रश्न : हे भगवन् यह जगत् क्या है और परमात्मा में कैसे दिखाई दे रहा है ?

उत्तर : जैसे गन्दर्व नगर आकाश में वर्षा ऋतु के समय दिखाई देता है वैसे ही यह जगत् चेतन चिदाकाश ब्रह्म में माया मात्र प्रतीत हो रहा है।

प्रश्न : गन्दर्व नगर किसे कहते हैं ?

उत्तर : जब बर्सात के दिनों में बादल छिन्न-भिन्न हो जाते हैं तब आकाश में उन के विचित्र रूप दिखाई देने लगते हैं, जैसे बड़े-बड़े बंगले, बगीचे, बाजारों के रूप में कहीं पहाड़, हाथी और घोड़ों, मनुष्यों के आकारों समान प्रतीत होने लगते हैं, इसे शास्त्रों में गन्दर्व नगर कहा है। अर्थात् आकाश का गन्दर्व नगर क्षण प्रतिक्षण बदलता हुआ अन्त में आकाश में ही लय हो जाता है, वैसे ही चेतन चिदाकाश ब्रह्म में यह कल्पित नाम रूप जगत बड़े विचित्र रूप में दिखाई दे रहा है, जो प्रतिक्षण परिवर्तन करता हुआ अन्त में उस में ही लय हो जाता है, तब कहा है—

तेरा सबख्याल है खल्कत, ये ही है वेद की दस्कत।
भूला क्यों भ्रम में भटकत, समझ में सुख समाया है ॥

उदाहरणार्थ : एक माता वर्षा ऋतु में अपने बालक को खाना खिलाने के लिए कह रही थी कि तुम जल्दी खाओ तो तुम्हें आकाश में दिखाई देने वाले बाग में सैर कराऊंगी। जब वह बाग देखते-देखते बंगले के रूप में आ गया, तब बालक माता से कहने लगा. यह तो बंगला है, वह बगाचा कहां चला गया ? माता कहने लगी बंगला ही तो तेरे रहने के लिये सुन्दर है। इतने में बंगला बदल कर हाथी के रूप में आ गया। तब बालक कहने लगा यह तो हाथी है। माता ने कहा तुम्हें मैं हाथी पर बिठा कर सैर कराऊंगी। बालक कहने लगा यह तो हाथी बदल कर घोड़ा हो गया। तब माता कहने लगी तुम्हारी सवारी के लिये घोड़ा अच्छा है। जब घोड़े की जगह बकरी दिखाई देने लगी तो बच्चे से कहा गया कि बकरी ही तो तुम्हारे बस में रहेगी। जब बकरी का आकार भी आकाश में लय हो गया, तब बालक कहने लगा कि अब तो कुछ भी नहीं रहा। तब माता ने कहा तुमने पेट भर रोटी तो खाई, बाकी सब गन्दर्व नगर ही तो था।

ठीक इसी प्रकार चेतन चिदाकाश रूपी ब्रह्म में यह जगत् नाम रूप मात्र प्रतीत होता हुआ क्षण प्रतिक्षण में बदलता रहता है, आज बाल अवस्था है, पता नहीं हम

कितने खेल-कूद की बातों को अच्छा समझ कर समय बिता देते हैं और वह बाल अवस्था भी बदल कर यौवन अवस्था का रूप धारण करती है जिस में आकर अनेक प्रकार के विषय भोगों की आशाएं बांधते हैं। थोड़ समय में वही बेटा बाप के रूप में बदल जाता है। फिर तो वृद्ध अवस्था आ जाती है और बड़े शोक व चिन्ताएं आ घेरती हैं। अन्त में इसी प्रकार जीवन समाप्त हो जाता है और कुछ काल के बाद कोई पूछता भी नहीं कि अमुक व्यक्ति भी जगत में हुआ था। तब कहा है—

कह रहा है आसमां, यह सब समां कुछ भी नहीं।
जिन के महलों में लटकते हज़ारों फानूस थे।
अब खाक उन के कबरों पर और निशान कुछ भी नहीं।

प्रश्न : चिदाकाश किसे कहते हैं?
उत्तर : जिसे वेद की श्रुति सत्यम ज्ञान अनन्त ब्रह्म के नाम से कथन करती है, जो आदि अन्त से रहित है। जिस के सहारे चिताकाश और भूताकाश प्रतीत हो रहे हैं।
प्रश्न : चिताकाश और भूताकाश किसे कहते हैं?
उत्तर : जिस शून्य आकाश में यह वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी और अनेक बनस्पति प्रतीत हो रहे हैं, उसे भूताकाश कहते हैं और जिस में प्राणी मात्र के चित मन अनेक संकल्प करते सूक्ष्म रूप से उड़ रहे हैं, उस का नाम चिताकाश है। अर्थात् मनुष्य का स्थूल शरीर जैसे भूताकाश में प्रतीत हो रहा है, वैसे मनुष्य का सूक्ष्म शरीर चित

आकाश में अपने संकल्प की सृष्टियें देखता रहता है ।

प्रश्न : चिदाकाश रूप ब्रह्म में यह भूताकाश और चिताकाश कैसे उत्पन्न हुए हैं ?

उत्तर : वास्तव में क्या भूताकाश क्या चिताकाश उस चेतन चिदाकाश में केवल प्रतीत मात्र हैं? जैसे चिताकाश चिन्तवन करो तो है, वैसे भूताकाश भी संकल्प मात्र से उत्पन्न हुआ दिखाई देता है । इस प्रकार कल्पित वस्तु अपने अधिष्टान से अलग सत्ता नहीं रखती, अर्थात् जगत् परमात्मा से जुदा सत्ता वाला नहीं है, वास्तव में परमात्मा ही जगत का विवृत्ति उपादान कारण कहा गया है ।

प्रश्न : विवृत्ति उपादान कारण किसे कहते हैं ?

उत्तर : जैसे आकाश ने अपने आकार रहित रूप को भी नहीं छोड़ा और नीलता, कराह आदि रूपों में भी दिखाई दे रहा है, वैसे परमात्मा अपने सत् चित आनन्द रूप में भी स्थित है और जगत् के नाम रूप आदिक पंचभूतों को भी अपने में आरोपित किया है ।

प्रश्न : आकाश का परमात्मा विवृति उपादान कारण कैसे है ?

उत्तर : वास्तव में आकाश का अपना है क्या ? वो अस्ति भाति प्रिय स्वरूप परमात्मा ही तो आकाश रूप में प्रतीत हो रहा है, अर्थात् आकाश के नाम को परमात्मा के अस्तिपने में तथा आकाश के नीलता आदिं पने को परमात्मा के भांति रूप ने सिद्ध किया है और आकाश के शून्यता को परमात्मा अपने प्रिय रूपता कर महा विशाल दिखा रहा

है, परन्तु भ्रमवश मनुष्य को आकाश से इतरि वह ब्रह्म का अस्ति भाति प्रिय रूप अनुभव नहीं होग ।

प्रश्न : राजा आश्चर्य में पड़ कर पूछने लगा कि पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु आदिकों का परमात्मा विवृत्ति उपादान कारण कैसे हो गया ?

उत्तर : जैसे स्वप्न अवस्था में तुम्हीं पृथ्वी, जल, अग्नि आदिक रूपों में दिखाई देते हो और फिर उनसे अलग भी अपने को अनुभव करते हो, वैसे जागृत अवस्था में परमात्मा पृथ्वी, जल, अग्नि आदि रूपों में भी प्रतीत हो रहा है और उन से अलग अपने पूर्ण सच्चिदानन्द रूप महिमा में भी स्थित है । तब कहा है—

सतदीप नव खंड चतुर्दश दसों दिशा में पूर रहियो ।
नाम रूप परपंच सर्व जो नहीं तांसों श्रुति दूर कहियो ।।
अन्त्र बाहर एको पूर्ण भेदभावना सकल हरं ।
सोई निज हमरो रूप सनातन मङ्गल रूप अनूप वरं ॥

उदाहरणार्थ : एक समय वशिष्ठ मुनि भगवान राम चन्द्र जी को उपदेश देते हुए अपना आश्चर्य मय वृत्तान्त सुनाने लगे कि मैं किसी काल में संसार के कार्यों से निवृत्ति हो कर चित का विश्राम पाने के लिए अनन्त आकाश में उड़ा और चन्द्र लोक को लांघ कर एकान्त स्थान आकाश में एक संकल्प की कुटिया रची और उसमें कुछ काल तक निर्विकल्प समाधि में रहा जब समाधि से

उतरा तो मेरे को एक धीमी सी आवाज सुनाई पड़ी, मानो मेरे को कोई बुला रहा है। जब मैंने उसी आवाज से संयम कर वृत्ति का सम्बन्ध जोड़ा तब मेरे को वहां एक ब्रह्मकुमारी की आकृत्ति दिखाई दी जो कह रही थी कि हे मुनिश्वर मेरी रक्षा करो। अर्थात् मेरे को दूसरी सृष्टि के ब्रह्मा ने अपने संकल्प से उत्पन्न किया था अब वह निर्विकल्प समाधि में स्थित होना चाहते हैं। कृपया आप चल कर इस विषय में ब्रह्मा जी को समझा बुझा कर मेरा कल्याण करें। तब मैं उस ब्रह्मकुमारी की प्रार्थना पर उन को सृष्टि में जाने के अर्थ चल पड़ा। जब लोक लोकान्तर पर्वतों को लांघ कर एक बड़ी स्वर्णमय शिला के समीप आ कर खड़े हुए तब वह ब्रह्मकुमारी कहने लगी कि हे मुनीश्वर इस शिला में हमारी सृष्टि है। आप इस के भीतर चलें फिर तो मैं उन के संकल्प के साथ अपना संकल्प मिला कर जब स्वर्ण की शिला में प्रवेश किया तब उस के भीतर मेरे को ऐसा ही जगत प्रतीत होने लगा। पृथ्वीलोक से आदि ब्रह्मलोक पर्यन्त सब अपनी २ मर्यादा में स्थित थे फिर तो ब्रह्म कुमारी के साथ मैं ब्रह्मलोक में जा पहुँचा, जहां ब्रह्मा जी इस भूताकाश और चिताकाश के संकल्प को छोड़ कर असली चेतन चिदाकाश रूप में विश्राम पाने के लिए समाधी स्थित हो रहे थे। उस समय ब्रह्मकुमारी ने ब्रह्मा जी को प्रार्थना कर जगाया कि दूसरे सृष्टि के वशिष्ठ मुनि अतिथि के रूप में पधारे हैं, आप उन का स्वागत कीजिए। तब ब्रह्मा जी मेरी ओर

देखकर वड़े प्रसन्न हुए और ब्रह्मा कुमारी के विषय में पूछने पर उन्होंने कहा कि मैंने इसे किसी समय चिताकाश में संकल्प कर भूताकाश में उत्पन्न किया था परन्तु अब मेरा समय पूरा हो गया है इस लिए मैं चिताकाश और भूताकाश इन दोनों को लय कर चिदाकाश रुप होना चाहता हूँ। सो मेरे संकल्प के लय होने कर सारा जगत लय हो जायगा। इसलिए ब्रह्मा जी ने मेरे को कहा कि आप शीघ्र ही इस सृष्टि से बाहर चले जाएं जैसे परलय होने के समय आप को कोई कष्ट न हो। वशिष्ट जी कहने लगे कि हे राम जी! फिर तो मेरे को परलय काल जैसे लक्षण दिखाई देने लगे, महा तत्व आदि अपनी मर्यादा छोड़ रहे थे इसे देखता हुआ मैं उसी स्वर्ण शिला के रास्ते बाहर निकल आया। इसी से ज्ञात हुआ कि इस भूताकाश और चिताकाश जगत का वास्तविक स्वरूप संकल्प मात्र है, साधारण लोग जगत् के नाम रूप क्रिया को देख कर अपने चेतन चिदाकाश सचिदानन्द स्वरूप को भुला बैठे हैं। तब कहा है—

कामल काम कमाल किया, तूने ख्याल से खेल बना दिया।
नहीं कागज कलम ज़रूरत है, बिन रङ्ग बनी सब मूरत है।
इन मूरत में इक सूरत है तैंने एक अनेक दिखाइ दिया।

प्रश्न : ऐसे सकल्पमय जगत् के नाम, रूप क्रिया में आसक्त होने का कारण कौन है?

उ..२ : अपने वास्तविकता से बाहर मुख होने के कारण यह नाम, रूप, क्रिया जादू जैसा असर कर रहा है जो आज कई लोग यही चाहते हैं कि हमारा नाम बड़ा हो, मेरे नाम का जहां तहां प्रशंसा हो, अगर कोई व्यक्ति उसे कह दे अमुक व्यक्ति तेरी निन्दा करता था, यह सुन कर वह बहुत जोश में आ जाता है अथवा घबड़ा कर फिर पूछने लगता है कि मेरे नाम उसने क्या कहा ? लोग भी बड़े विचित्र हैं कि वो तुम्हारे नाम कहता था कि बड़ा निकमा है उसे कोई पूछता तक नहीं। अपने नाम यहसुन कर वो बड़ा चिन्तातुर होता है अगर अपने नाम की प्रशंसा सुनता है तो फूला नहीं समाता।

उदाहरणार्थ : एक जमीदार को सरकार की ओर से जब राय साहिब की उपाधि मिली तब गांव के लोगों से वह कहने लगा कि अब मेरा नाम बड़ा शानदार राय साहब हो गया है, इसलिए मेरे को उस छोटे नाम से मत पुकारा करो। गाँव के सीधे-सादे आदमी जल्दी तो समझने वाले नहीं थे । एक बार किसी गरीब ने जमींदार को उस के नाम बुलाया तो वह क्रोधित हो कर गरीब की गायों को जो उस के जमीन में चर रही थी उन सब को बांध कर सरकारी बन्दी-गृह में ले जाने लगा तो गरीब ने कहा कि ईश्वर के नाम पर छोड़ो, धर्म के नाम पर, जाति के नाम पर मेरी गायें छोड़ो । मेरे पास दण्ड भरने के लिए पैसे नहीं हैं, परन्तु उसने कुछ नहीं सुना। जब बन्दी-गृह के समीप आ पहुंचा तब

किसी ने गरीब के कान में कहा—तुम ऐसा कहो कि राय साहब के नाम पर छोड़ो, जब ऐसा पुकारा, तब जमींदार खड़ा हो गया और कहने लगा कि यदि तुम पहिले ही इस नाम से बोलते तो इतना कष्ट करना नहीं पड़ता। गरीब आदमी यह सुन कर दङ्ग रह गया कि क्या ईश्वर के नाम से भी राय साहब का नाम बड़ा है। ठीक इसी प्रकार आज कितने ही लोग अपने नाम की बड़ाई के पीछे धर्म, नीति और मर्यादा को भी भूल जाते हैं। तब कहा है—

कंचन तजना सहिज है, सहिज त्रिया का नेह।
नाम बड़ाई, ईर्ष्या, कठिन तजना येह ॥

प्रश्न : हे भगवन ! नाम का जादू समझ में आ गया, अब कृपा कर रूप का प्रभाव क्या है वर्णन करें ?

उत्तर : ९९ प्रतिशत लोगों में रूप का जादू इतना छा गया है कि कोई किसी के गुण, स्वभाव पर थोड़ा भी ध्यान न दे कर केवल रूप के पोछे परेशान रहते हैं। आजकल तो शादी विवाह का सम्बन्ध लगभग रूप पर ही निर्भर हो रहा है। परन्तु विचार कर देखा जाए तो वह रूप क्षण प्रति क्षण में बदलता क्षीण होता जा रहा है। आठ महीने का बालक जब अस्सी वर्ष का वृद्ध हो जाता है तो उसे कुरूप देख कर कोई पूछता तक नहीं।

वेदान्त कहता है कि इस देह का रूप तो आप को एक कर्मों की टिकट समान मिला है, अगर धनवान के घर में जन्म लेता है तो धनी कहलाता है और गरीब के घर में जन्म लेता है तो निर्धन कहलाता है। जब कर्मों का सम्बन्ध समाप्त हो जाता है तो वह रूप राख में मिल जाता है तब न रिश्ता रहता है न ही नाता रहता है सब छोड़ कर अकेला जाता है। तब कहा है--

देही देख न भूलो भाई, देही कर्म भ्रम से पाई।
भूख, प्यास का भान, पापी पुण्यी कहाएगा।
आत्म किसका नाम, साक्षी कौन कहाएगा।

उदाहरणार्थ : एक गांव में बड़ा धनवान जमींदार रहता था जो सारा दिन अपने देह के अध्यास में, बाल-बच्चों के रूप में आसक्ति और सोना-चांदी माल-मलकियत सब रूप ही रूप तो है। उन रूपों का धनवान पर निशदिन जादू चढ़ा रहता था, जिस कारण वह गांव के किसी भी गरीब को न पूछता था, न उन की सुनता था। एक दिन उसी गाँव में नारद जी आ पधारे, लोगों को दुखी-दीन देख कर पूछने लगा कि तुम्हारी ऐसी दशा क्यों हुई है ? गरीबों ने सारा वृतान्त कह सुनाया कि यह बड़ा जमींदार होते हुए हमारी सुनता नहीं, अगर जमीन के छोटे-छोटे टुकड़े हमें निर्वाह के लिए दे दे, तो हम उस में खेती कर अपना शान्ति से जीवन बिता सकें। फिर तो नारद जी धनवान के घर पर जा पहुंचे, परन्तु धनवान ने उन्हें अन्दर आने की आज्ञा न

दो, आखिर जैसे-तैसे नारद धनवान के समीप पहुंच ही गये और उन से कहा कि सारे गांव वालों को अपना ही रूप समझ कर उन की रक्षा करो, उन का भला तुम्हारा ही भला है। परन्तु धनवान ने एक नहीं सुनी, उल्टा क्रोधित हो कर अपने पुत्रों को कहा कि यह साधू तो लूट मार करने आया है, इसे शीघ्र घर से बाहर निकाल दो। जब नारद जी का बड़ा अपमान कर उन्हें घर से बाहर निकाल दिया फिर तो नारद जी दूसरे दिन प्रातः काल को जैसे ही धनवान नदी पर स्नान के लिए घर से बाहर निकल गया तो झट नारद जी धनवान जैसा ही रूप धारण कर उसी घर में आकर धनवान के बड़े कमरे में बैठ गए। तब सब घर वाले उन के समीप आकर पूछने लगे कि आज आप इतना जल्दी वापिस क्यों लौट आये ? तो उन्होंने सब कुटुम्बियों को आश्चर्य में डालते हुए कहा कि मेरे को ऐसा कोई भूत दिखाई दिया जिसने मेरे जैसा ही रूप धारण कर रखा है. सो ऐसा न हो कि मेरे न होते घर में आकर झूठ-कपट का जाल बिछा कर सारा धन माल ही न उठा ले जाए। फिर तो पिता के पुत्र पोत्रे आदि सब घर के दरवाजे पर लाठी ले कर सावधान हो गये। इतने में वह असली धनवान जब घर में आने लगा तो उन के बाल-बच्चों ने ही उसे रोक कर कहा कि बाहर निकलो ये तुम्हारा घर नहीं है, तुम धूर्त हो। इतने में अन्दर से नारद पिता के रूप में बाहर निकल आया और कहा कि देखो-देखो, यह कैसा कपटी ठगने के लिए आया है इसे जल्दी हवलात में पहुंचाओ। फिर तो बच्चों ने उस की लाठियों से खूब खबर ली और मार-मार कर उसे पुलिस के हवाले कर दिया। फिर तो

केस चलना शुरू हुआ, जब हाजरी हुई तब सब लोक दोनों का एक रूप देख कर बड़े आश्चर्य में पड़ गए कि इन में कौन धनवान सच्चा है, कौन झूठा है, क्योंकि आजकल बाहर रूप की ही पहिचान है, वास्तविकता कर तो कोई किसी को जानता नहीं। फिर तो नारद मुनि रूप वाले पिता ने कहा कि घबड़ाने की कोई बात नहीं, हमने ६ महीने पहिले जो लड़के की शादी की थी उस पर कितना धन लगा था और कितना दहेज मिला था वो या मैं बताऊं, या यह बाहरूपिया बताए । यह सुन कर कोर्ट ने स्वीकार किया, परन्तु वो असली पिता तो बता ही न सका और नारद पिता ने तो दोनों ही टोटल रुपये आने पैसे समेत बता दिया और वन्दियों को देखने से भी सोलह आना ही सही निकला। फिर तो नारद पिता का जै-जैकार हुआ और असली पिता जो पहिले ही घर से निकाला गया था । अब उसे पक्का देश निकाला मिल गया, वह विचारा उजाड़ वन में भूखा-प्यासा घूम रहा था, उसे कोई पूछता भी नहीं था । इतने में नारद जी आ पधारे, तो धनवान रो कर उनके चरणों में गिर पड़ा कि मेरी रक्षा करो । तब नारद जी ने कहा मैंने तो तुम्हें बहुत समझाया कि अपने जमीन का कुछ हिस्सा टुकड़े-टुकड़े कर गरीबों में बांट दो । धनवान कहने लगा मैं तो सारी जमीन देने को तैयार हूं, केवल मुझे घर में वापिस आने दो। नारद जी ने कहा संसार रूप में फंसा हुआ है तुम रूप का अभमान छोड़ दो और सब में भगवान समझ कर सेवा करो। अब अपने घर में जाओ और यह किसो को नहीं कहना कि मैं वही हूं या और हूँ । ऐसा कह कर नारद जी अन्तर्ध्यान हो गये। तब कहा है–

मिथ्या रूप के प्रेमी बहुत देखे,

निज रूप का प्रेमी कोई है जी ।

जांसू खण्ड ब्रह्माण्ड प्रकाश हुआ,

सारी जग रचना सोई है जी ।

चारों कुण्ठ तपास कर देखा,

जहां जाऊं सागी सोई है जी ।

और चाम सेती मेरा काम केहिड़ा,

आत्म राम ने मेरी दिल मोही है जी ।

प्रश्न : हे भगवन ! अब मैंने रूप आसक्ती के प्रभाव को समझा ! शत्रु, मित्र, पुत्र, स्त्री, धन, वस्त्र, भूषण और बड़ी-बड़ी बिल्डिगें सब रूप का ही जादू है । जिस में मनुष्य जीवन पर्यन्त फंसा रहता है । अब कृपा कर मेरे को क्रिया के आसक्ति का कारण समझाइए ?

उत्तर : नित्य निवृत्ति रूप आत्मा के ज्ञान बिना मनुष्य भ्रमवश अनेक प्रवृत्ति रूप क्रियाओं में सुख बुद्धि कर आसक्त होता जा रहा है । जैसे मैं विषय भोगूं, यह शब्द, स्पर्श, रूप, रस, प्राप्त करूं । इस प्रकार देखा-देखी में अनेक प्रकार के क्रियाओं के अधीन हो कर दुर्लभ जीवन व्यर्थ बिता रहा है । तब कहा है—

कोई हाल मस्त, कोई माल मस्त कोई तूती मैना सूए में ।

कोई खान मस्त पहरान मस्त, कोई राग-रागनी जुए में ।

कोई अमल मस्त, कोई रमल मस्त, कोई शतरंज चौपड़ जूएमें।
इक खुद मस्ती बिन और मस्त सब पड़े अविद्या कूए में।

उदाहरणार्थ : एक नवयुवक जिसे छोटी अवस्था में ही वहुत धन प्राप्त हो गया। धन प्राप्ति के वाद उसने औरों की नकल कर बहुत से नौकर अपने पास रख लिए। एक खाना बनाने वाला, एक कपड़े पहनाने वाला, एक जूता साफ करने वाला और एक होटल में साथ चलने वाला, इस प्रकार उस की क्रिया दिन प्रतिदिन इतनी बढ़ गई, खर्चा भी दस गुना होने लगा। उसको अपने क्रियाओं से फुर्सत ही नहीं मिलती थी। एक समय रात को उसी धनवान के घर के फाठक के सामने आग लग गई। यह देख कर उसने एक नौकर को बुलाया और कहा कि जल्दी उठो मुझे कपड़े पहिनाओ, फाटक के सामने आग लगी है। नौकर आँखें खोलते ही घर की खिड़की से छलांग मार कर वाहर भाग गया कि ऐसे खतरे के समय कपड़े कौन पहिनाए। फिर धनिवान ने दूसरे नौकर को बुलाया कि मुझे जूता पहिनाओ, आग फाटक के पास आ गई है। वह नौकर भी सुनी-अनसुनी कर अपने सामने वाली खिड़की खोल कर बाहर निकल गया कि अपनी जान बचाएं या जूता पहिनाएं। इस प्रकार नौकर एक-एक कर निकलते गये और धनवान अकेला ही आग के लपटों से चिन्तातुर खड़ा है, अब चाहे तो नौकर के समान खिड़की में छलांग मार कर निकल जाए और चाहे तो उन क्रियाओं के बड़पन में अपना जीवन गंवाए। तब कहा हैं—
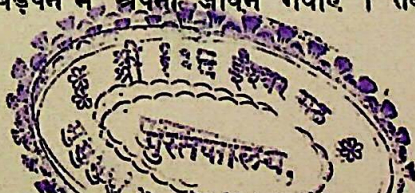
मुल्कगीरी में सिकन्दर से हजारों मर मिटे।
अपने पर कब्जा ना किया फिर किया क्या कुछ भी नहीं।

वेदान्त कहता है कि परमात्मा में जगत की तस्वीर केवल नाम रूप क्रिया मात्र है, जो विचारवान इन तीनों से नजर उठाता है उन की दृष्टि में सच्चिदानन्द ब्रह्म समा जाता है, क्यों कि यह जगत परमात्मा के अज्ञान कर ही हमें उत्पन्न हुआ दिखाई देता है अर्थात् हम कहते हैं कि हमें परमात्मा नहीं दिखाई देता तो फिर उस के अस्ति भाति प्रिय रूप में जगत की कल्पनाएं सिद्ध होने लगती हैं। उन नाम रूप पदार्थों में आसक्त होना ही जगत है, उसमें सुख-दुख की भावना करना यही जगत है फिर आप ही अपने को बन्धायमान समझना यही भ्रम है, इस प्रकार परमात्मा में जगत हम ही देखते हैं और हम ही कर्मों के फलों को पाते हैं। जैसे स्वप्न को हम ही अपने में देखते हैं और हम ही हैरान होते हैं। जैसे रसी में सांप हम ही देखते हैं और भय भी हम ही खाते हैं। तब कहा है—

तेरा सब ख्याल है खल्कत, ये ही है वेद की दसकत।
भूला क्यों भ्रम में भटकत, समझ में सुख समाया है।
ज़रा तुम जाग कर देखो कि तुम ही नूर न्यारा है।

❀ ॐ ❀

प्रवृत्ति में बन्धन क्यूं ?

प्रश्न : हे भगवन ! इस नाम रुप क्रिया की प्रवृत्ति में बन्धन का कारण क्या है ?

उत्तर : एक अध्यष्ठान सच्चिदानन्द स्वरुप के अज्ञान कर प्रवृत्ति में आसक्ति जीव अनेक बन्धनों को सहन करता है । जैसे स्वर्ण के भूषण में वास्तविक सत्य सोना है और भूषण का नाम रुप और पहिनने की क्रिया, तीनों स्वर्ण में प्रतीत मात्र है, तो भी लड़कियें आसक्तीवश भूषण ही चाहती हैं, परन्तु शराफ की नज़र हज़ारों भूषणों को देखते हुए भी एक सोने पर ही रहती है । जैसे मिट्टी से बने हुए घड़े में, घड़े का नाम रुप और जल भरने आदि क्रिया तीनों में उस का अपना कुछ भी नहीं, खाली कहने मात्र घड़ा कहा जाता है । वैसे जगत् के नाम रुप क्रिया में परमात्मा ही ओत-प्रोत है, जिसके ज्ञान न होने के कारण जगत का नाम रुप क्रिया ही सत्य प्रतीत होने लगता है । तब कहा है —

ये जग जान सपना देखा तज मन मूर्ख अनहोता ।
नाम रूप में भटकत भूला, है है हार जन्म खोता ।

ये जग कल्प वृक्ष की छाया, जिसमें रहना किसे न पाया।
ये अवसर तेरे दो दिन का है गफलत नींद में क्यों सोता।

उदाहरणार्थ : एक समय कोई वैरागी बाबा शराफ के पास दो सोने की मूर्तियां ले गया। शराफ ने दोनों मूर्तियें कांटे में तोल कर देखा तो एक-एक तोले की मूर्ति थी। जिस के २१-२१ रुपये वैरागी बाबा के हाथ में पकड़ा दिये। बस फिर तो वैरागी बाबा शराफ पर इतना क्रोधित हो गया जो बड़ी-खरी खोटी सुना कर शराफ छाती पर चढ़ बैठा कि क्या तूं हिन्दू नहीं है ? तो कहने लगा बाबा ! मैं तो सनातनी हूं बाबा कहता था कि मैं तुम्हें आज सच्चा सनातनी बना कर ही छोड़ूंगा। फिर तो वहां कितने लोग एकत्रित हो गये कि असल बात क्या है। शराफ ने कहा कि बाबा दो मूर्ती एक-एक तोले सोने की लाये थे जब इन्हें दोनों मूर्तियों की एक जैसी रकम दी गई; तब वैरागी बाबा बड़े जोश में आ गया कि श्री महावीर जी की मूर्ति का भी २१) रुपया और भगवान रामचन्द्र जी की मूर्ति का भी २१) रुपया; यह कितना बड़ा अन्याय है। फिर तो सब लोग बात को समझ गए कि शराफ ने सोने में मूर्तियें भुला दी है और बाबा ने मूर्तियों में सोना गुम कर दिया है। ठीक इसी प्रकार जगत में जिन की दृष्टि नाम रुप क्रिया पर लगी हुई है, उन को अनेक बन्धन आसक्ति रूपी झगड़े कभी नहीं छोड़ते और जिन की नाम रूप क्रिया में सच्चिदानन्द स्वरूप पर दृष्टि लगी हुई है उनको नाम रुप क्रिया की प्रवृत्ति में रहते हुए भी कोई बन्धन या राग द्वेष नहीं होता क्योंकि प्रवृत्ति में नाम रुप क्रिया पर रुक

जाने से भेदःभाव रूपी बन्धन उत्पन्न होते हैं, नहीं तो प्रवृत्ति में निवृत्ति, भेद में अभेद पहले ही छिपा हुआ है। सिर्फ उस नजर की जरूरत है। तब कहा है—

यार को हमने जाइ बजाइ देखा, कहीं बन्दा कहीं खुदा देखा,
शिकल बुलबुल में चहचहाके हंसा है वो;
शिकल गुल में खिल खिलाइ देखा
कहीं हैं बादशाह तखते नशीन,
कही हाथ में लिये कसाई देखा

प्रश्न : जो लोग अपने निवृत्ति रूप आत्मा के ज्ञान से रहित है, जिनका शरीर, मन, इन्द्रियों की प्रबृत्ति से तादात्म अध्यास रहता है। उन की क्या गति होवे है ?

उत्तर : शरीर मन इन्द्रियों के साथ तादात्म अध्यास रखकर कम करने वालों की गति शास्त्रों में अनेक प्रकार की वर्णन की गई है जो सूर्य, असूर्य आदि लोकों में जन्मों को धारण कर अपने शुभाशुभ कर्मों के फल भोगते रहते हैं।

प्रश्न : असूर्य लोक किस का नाम है और वह कहां है ?

उत्तर : जो पृथ्वी के अन्दर सर्प आदिक देहधारी जाव उत्पन्न होते हैं, जहां कभी सूर्य उदय होता नहीं, इस लिये उस का नाम असूर्य लोक है। वे असूर्य लोक वासी सारा दिन अन्धकार में बिताते हैं। और उन का चित भी अविद्या रूप अंधकार में रहता है। अगर कभी २ रात को पृथ्वी से बाहर निकलते हैं तो भी अन्धकार में ही विचरते हैं। जैसे काली रात में काली कीड़ी काले पत्थर पर

भ्रमती हो, उस पर किसी की नजर नहीं पड़ती, तैसे अज्ञान रूपी अंधकार में काले कर्मों को काले अन्तःकरण से करने वाला जीव असूर्य लोक की यात्रा करता है, और यम याचना को सहन करता है। तब कहा है—

यम से कौन सगाई तेरी
मात पिता तज स्वर्ग सिधारे तुम जानत हो मेरी
तन नगरी किस की नहीं पियारे यह है भूतनी केरी
करना हो तो करो न भूलो आगल रैन अंधेरी

प्रश्न : जगत की इतनी जिम्मेवारी जीवों पर क्यूं ढाली गई है ?

उत्तर : यह जगत जैसे परमात्मा से जुदा नहीं, तैसे जीव आत्मा से भी जुदा नहीं। जैसे आकाश वायु आदिक पांच तत्वों का परमात्मा विवृत उपादान कारण है, तैसे उन पांच तत्वों से ही सम्पूर्ण जीवों का तादात्म अध्यास है। इसी कारण एक ही वायुमंडल से सम्पूर्ण प्राणी प्राण ले रहे हैं। एक ही पृथ्वी के अन जल से अपना पालन पोषण कर रहे हैं। एक जैसा ही शीत उष्ण से सबको सुख दुख होता है, एक ही आकाश के विकास में सब ही चल फिर रहे हैं. फिर अज्ञान वश जो जीव एक दूसरे से अन्याय करते हैं भेद-भाव रख कर किसी को व्यवहार में धोखा देते हैं अथवा अन्य य करते हैं, वो मानो अपने को अंधकार में रखते हैं। तब कहा है—

है खटिका उसके साथ लगा; जो और किसी को दे खटका।
वो गैब से झटिका खाता है; जो और किसी को दे झटका।

चीरे के बदले चीर है, पटके के बदले है पटका।
क्या कहिए किस के आगे तमाशा है सब झटपटका

उदा०—एक भले स्वभाव वाले मनुष्य को यात्रा करते समय रास्ते में बुरे स्वभाव वाला मनुष्य आकर मिला और कहने लगा आपस में इकट्ठे ही चलें । इस लिये यात्रा में पहले जो भी कुछ खरचा हो वह तुम करते चलो फिर मैं करूंगा। भले मनुष्य ने यह बात मान ली। जब यात्रा करते भले आदमी के सारे पैसे खर्च हो गए बाकी सफर का सामान ही आकर बचा, यह जान कर उस बुरे आदमी ने जंगल में आधो रात को उठकर गहरी नींद में सोए हुए भले आदमी को उठा कर एक अंधे कुएँ में फेक दिया, और उसका सामान उठा कर चलता बना। भले आदमी को कुएँ में एक वृक्ष की जड़ का रास्ता मिल गया और सावधान होकर बड़े विलाप करने लगा। इतने में एक भेड़ चराने वाला आ निकला. उसने जैसे तैसे कर उसको कुएँ से वाहर निकाला और पगडन्डी का रास्ता दिखा कर कहा कि यहां से तुम सीधे बड़े शहर में पहुंच जाओगे। भला आदमी ठण्डो से ठुठरता हुआ जब उसी बड़े शहर में जा पहुँचा तो उसे खाने के लिए एक पैसा भी नही था और भूख बड़ी सता रही थी, किहीं लोगों ने कहा कि आज यहां महाराजा का राज तिलक है, वहां खाने के लिये बडा भण्डारा खुला हुआ है । फिर तो वह भला आदमी जल्दी वहां पहुँच गया और भोजन पाकर उसी महाराजा के राज तिलक में भी आ शामल हुआ। जब लोगों के बीच में सुन्दर रथ पर राजा को विराजमान देखा, जिस के चारों ओर से लोग जय जय कार पुकार रहे थे । फिर तो उस भले आदमा

के आश्चर्य की हद न रही, जो उसे वो ही बुरे स्वभाव वाला आदमी जो कल रात को उसे कुएँ में फेंक कर चला था, आज वही राज तिलक के अर्थ बड़े सन्मान के साथ स्वर्ण के रथ पर विराजमान है और सिर पर चँवर झूल रहे हैं। फिर पूछ ताछ करने पर भी यह निश्चय हुआ कि बराबर सुबह को आते वक्त इसे दो आदमियों का सामान साथ में था। दुरभाग्य वश इस देश के राजा स्वर्गवास हो जाने के कारण उन की कोई सन्तान न थी, तब प्रजा वासियों ने यह प्रतिज्ञा की थी कि आज हमारे देश में प्रातःकाल जो अतिथि सब से पहले पहुँचेगा उसे हम राजतिलक देंगे. तो ऐसे शुभ अवसर पर यह आदमी आकर पहुँचा। भले स्वभाव वाला आदमी यह सारा वृतान्त सुन कर भारी संशय में पड़ गया कि ईश्वर को कैसे न्यायकारी माना जाए, जो बुराई करने वाले को बादशाही देता है और भलाई करने वाले को अंधे कुएँ में फेंकवाता है। ऐसे ईश्वर की सृष्टि में हमें जी कर क्या करना है। फिर तो वो भला आदमी जंगल में जा कर वहां लकिड़ियें इकट्ठी कर उन में आग लगा कर आप भी उसी धधकती हुई आग में पड़ने वाला ही था, तब इतने में एक महापुरुष आ निकला जिसने उस के सिर पर हाथ रख कर कहा कि दो मिनटों के वासते आंखे बन्द करो। तत्पश्चात् जब आंखे खोली तो उसने अपने को दो सुन्दर बगीचों के बीच में देखा, जिनमें से एक बाग तो बड़े सुन्दर हरे-भरे फलों वाला था, जिस को एक कोने से क्रूर, राक्षस आग लगाता जाता था और दूसरी तरफ नया बाग लग रहा था जिसमें कितने माली मिल कर सुन्दर फूल और फलों के पौधे जल्दी २ लगा रहे थे। यह विचित्र दृश्य देख कर भला आदमी
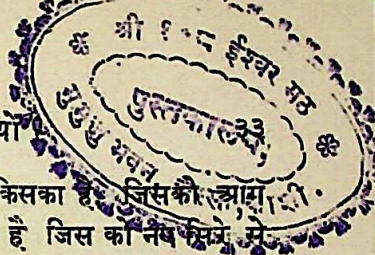
महापुरुष से पूछने लगा कि वह बाग किसका है जिसको आग लगी हुई है ? और यह बाग किसका है जिस को नये सिरे से लगाया जा रहा है ? तब उस दिव्य पुरुष ने उत्तर दिया कि वह फला फूला हुआ बाग जिसको आग लगी हुई है वो बुड़े स्वभाव वाले आदमी का है पहले उसके बड़े पुण्य कर्मों ने लगाया था। अब उसको पाप कर्म रूपी राकसु बाग को जला रहे हैं और ये नया बाग तुम्हारे शुभ कर्मों कर सरसबज हो रहा है इसमें उत्तम फलों के पौधे बढ़ रहे हैं, जब इसमें उत्तम फल लगेंगे तब उनका आनन्द रूपी रहस्य प्राप्त कर तुम ईश्वर को धन्यवाद देने लगोगे। यह सारा दृश्य भला मनुष्य देख कर बड़े आश्चर्य को प्राप्त हुआ फिर तो आगे से भी बड़ा श्रद्धावान बन कर और निहसुवार्थ भाव से लोगां का भला करने लगा। तब कहा है।

तू और की तारीफ कर, तुझको भी सखवानी मिले।
कर मुशकल आसान और की तुझको भी आसानी मिले॥
तू और को महमान कर तुझको भी महमानी मिले।
क्या खूब सौदा नकद है। इस हाथ दे उस हाथ ले॥

वेदान्त कहता है वास्तव में प्रवत्ति बन्धन रूप नहीं है, हमारे स्वार्थी विचार ही बन्धन के कारण है। जैसे वायु चलता है, नदियें बहती हैं, सूर्य उदय होता है और समुद्र रात दिन उमंगों से उछलता है, इतने प्रवृत्ति होते हुए भी उन्हें किसी बन्धन में नहीं कहा जाता। वैसे मनुष्य भी व्यवहार में जैसा विचार रखता है वैसा हो जाता है।

जैसे प्रातः काल को उठते ही खेती करने वाले को यह विचार उत्पन्न होता है कि सवेरे ही सब्जी लाद कर हमें शहर वासियों को पहुँचानी चाहिए, क्योंकि उसने शहर के लोगों के लिए ही सब्जी बोई है। भूमि में अनाज बोने वालो से पूछो कि यह तुमने गेहूं,चना अपने लिए ही बोया है? वो कहता है कि नहीं सारे देश वासियों के लिए। इस प्रकार हम जो भी प्रवृत्ति करते हैं, वो सिरफ अपने लिए नहीं वल्क औरों के लाभार्थ होती है। सीधे वाले सवेरे ही दुकान खोल कर क्यों बैठ जाते हैं? जैसे कोई भूखा न लोट जाए। इसी प्रकार कपड़े वाले कपड़ा लकड़ी वाले लकड़ी दूर दूर से मंगा कर एक दूसरे की जरूरतें पूरी करते हैं। वासत्व में यह प्रवृत्ति सेवा भाव से की हुई परसपर एकता भाव को बढ़ाने वाली है क्योंकि जगत से हमारा एक जैसा ही सबंध है, इस लिए जैसा हम दूसरे के लिए करते हैं वैसा ही हमारे लिए होता है। तब कहा है—

जो और के मुख में मिश्री दे, फिर वोभी शकर खाता है।
जो और को ठोकर मार चले, फिर वोभी ठोकर खाता है॥
जो और को डाले चक्कर में, फिर वोभी चक्कर खाता है।
कुछ देर नहीं अन्धेर नहीं, इन्साफ अदल परसती है।
इस हाथ करो उस हाथ मिले. ये सौदा दसत बदसती है॥

वेदान्त कहता है हम सब आत्म कर के एक ही हैं। जैसे शरीर अनेक हैं, वैसे प्रवृत्तियें भी असंख्य हैं। परन्तु निवृत्ति

रूप साक्षी आत्मा सबका एक है इस लिए हमारा एक दूसरे के वासते निषकाम प्रेम होना चाहिए। जैसे घोड़ा आदमी के लिए हैं तैसे आदमी भी ..तना ही घोड़े का खयाल करता है। क्योंकि एक ही व्यक्ति परसपर सहारा लिए बिना अपनी सारी जरूरते आप पूरी नहीं कर सकता है।

इस प्रकार जगत में अनादी काल से जीवों की आपस में एकता बनाए रखने वाली प्रवृत्ति बन्धन रूप नहीं है, परन्तु आज कल जो सुवार्थ के आवेश में आकर उसी एकता रूपो अमृत में विक्षु मिलाई जा रही है। वो ही प्रवृत्ति भाड़ी बन्धन का कारण है। जैसे लोभ वश लोगों के खाने पीने की चाजों में मिलावट कर उनमें अनेक रोग उत्पन्न करना, या मौके पर लोगों को तंग कर उन्हें महंगा माल वेचना, अथवा दीन हीन गरीबों को मेहन्त का पूरा मजूरा न देना। इसा प्रकार संसार में दुःखों और कष्टों को फैलाने वाली प्रवृत्ति ही महां दुःख रूप है। तब कहां है-

जो चाहले चल इस घड़ी, यहा जिनस सभु तैयार है।
आराम में आराम है, आजाब में आजाब है॥
दुनिया न जान इस..ा भाई, ये तो दरयाह की मझधार है।
औरों का वेड़ा पार कर, तेरा भी बेड़ा पार है॥

एक बड़ा कंजूस धनवान किसी महापुरुष के आगे आकर प्राथंना करने लागा कि मैं बड़ा दुखी हूं और कितने उपाय कर हारा हूं, इस लिये आप कृपा कर कोई उपाय कहें, जिस कर

मेरा दुःख दूर हो ? महापुरुष ने कहा कि जितना तुम्हारे पास धन सम्पत्ति है, उस के दो हिस्से करो ! जिस में से एक हिस्सा गरीब अनाथों में बांट दो और एक हिस्सा अपने नृवाह अर्थ रखो। ऐसा करने से धनवान का सारा दुःख दूर हो गया। फिर किसी ने आकर महापुरुष को कहा कि मेरे को स्वर्ग सुख की प्राप्ति कैसे हो ? सतिपुरुष ने उत्तर दिया कि जितना प्रेम सनेह तुम्हारा अपने कुटुम्ब परिवार में है उसे आधा कर दो और आधा प्रेम सनेह देश जाति के लोगों की सेवा में लगाओ तो तुम्हारे लिए स्वर्ग का दरवाजा खुल जायगा। फिर तीसरे मनुष्य ने आकर कहा कि मेरे को परमात्मा का आत्मा में कैसे साक्षात्कार होगा ? सतिपुरुष ने उत्तर दिया कि जितना प्रेम तुम्हारा अपने पुत्र में है, उतना ही प्रेम सब प्राणी मात्र से करो तो ईश्वर का अभेद दर्शन हृदय में अवश्य होगा। इसी प्रकार तीनों को वर्तात करने से परम सफलता प्राप्त हुई। तात्पर्य किया है कि वास्तव में जीव जगत और ईश्वर तीनों एक दूसरे से अलग नहीं है। परन्तु हम ही ज्ञान अथवा अज्ञान वश प्रवृत्ति करने से जगत को बन्धन या मुक्ति का कारण बनाते हैं। जैसे ईश्वर इस जगत को अपना खेल समझ कर हर्ष शोक से रहित होकर लीला करने आता है, अगर तैसे जीव भी इस जगत को तमाशा समझ कर निशकाम होकर अपने प्रवृत्ति का पारट पूरा करने लगे तो उसके लिये कोई भी प्रवृत्ति बन्धन का कारण कभी नहीं बन सकती। जैसे खिलाड़ी खेल में हार जीत दोनों में समान रह कर तमाशा करता है, उसे संयोग अथवा वियोग से न हर्ष पैदा होता है. न शोक ! न राग होता है न द्वेष।

॥ ॐ तत्सत् ॥
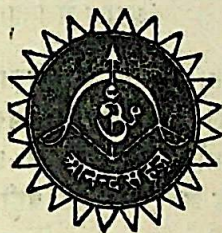
जीव कैसे बना ?
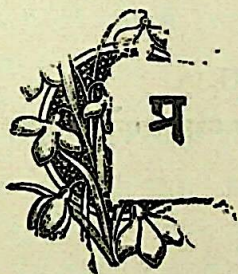
प्रश्न : हे भगवन ! जगत और ईश्वर का स्वरूप तो समझ में आ गया, अब कृपा कर कहो यह जीव कैसे बना और इसका क्या स्वरूप है ?

उत्तर : यह एक मुख्य सुवाल है। जिसको भारत के ब्रह्मवेत्ताओं ने बड़ी सावधानी से हल किया है कि जीवात्मा में जो जीवपना है वह न सत्य है न असत्य है। जैसे दर्पण के सम्मुख होने पर जो उसमें आपको मुखाभास दिखाई देने लगता है, वह सत्य है न असत्य है। क्योंकि जब तक आप दर्पण के सामने हैं, तब तक वह मुख दर्पण में दिखाई देता है, और जब आप दर्पण के सामने नहीं हैं तो दर्पण में ढूढने पर भी मुखा

भास नहीं मिलता । ठीक इसी प्रकार साक्षी आत्मा का अन्तःकरण रूपी दर्पण में जो आभास पड़ता है उसका नाम जीव रखा गया है, अर्थात् जो शरीर मन इन्द्रियां आदकों में जीता है और आत्मा के ज्ञान कर फिर वही रूप हो जाता है । और अज्ञान में वही जीव अन्तःकरण के अध्यासवश अपने को तुच्छ हर्ष शोक कर दीन दुःखी मानने लगता है । इसी प्रकार मनुष्यों से लेकर कीड़ी प्रयन्त जितने भी देह धारी हैं उन में यह जीव अन्तःकरण से मिल कर अनेक शुभ अशुभ कर्मों का भोक्ता बनता है । अगर मानुष जनम में कोई मोक्ष का जज्ञासू अपने को जीवपने से मुक्त करने अर्थ जब वास्तविक स्वरूप आत्मा का साक्षात्कार करता है तो उसी क्षण सम्पूर्ण कर्म बन्धन से मुक्त हो कर वही असंग रूप हो जाता है । फिर अपने को जीव आभास नहीं मानता । तब कहा है —

दरयाह से हबाब की है ये सदा,
मुझको न समझ अपने से जुदा ।
तुम और नही हम और नही ।
आई ने मुकाबल रूख जो रखा,
झट बोल उठा नक्श उस का ॥
क्यूं देख के यार हैरान हुआ ।
तुम और नही हम और नही ।

प्रश्न : यह जीवाभास समीप से समीप होते हुए भी अपने आत्मा का ज्ञान क्यू नहीं प्राप्त करता ?

उत्तर : अन्तःकरण आदकों के स्वभावों के आधीन हो कर अल्पज्ञता के कारण अपने को और का और मानने लगताहै। इसी कारण वास्तविक स्वरूप के ज्ञान से सदा बाहरमुख रहता है। तब कहा है —

जो ो वृती अंतर कर लीजे।

भरमत भरमत जग में दुःख पायो अब काहू को खीजे।

मानुष जनम जानो अति दुर्लभ कारज आपनो कीजे।

शामवेद के केन उपनिषद् में एक उदाहरण मिलता है कि एक वृक्ष में दो पक्षी निवास करते थे, उनमें से एक तो वृक्ष की चोटी पर नृअहार रहता था। और दूसरा वृक्ष की डाली २ पर फल फूलों की आशाओं में फिरता था। कहीं मीठा फल मिलता है तो फूला नहीं समाता, अगर कड़वा फल चखता है तो बड़ा व्याकुल हो जाता है, इसप्रकार वह पक्षी सुखदुःख आशा निराशा के बीच भरमता रहता था। और जो वृक्ष के ऊपर चोटी पर पक्षी बैठा था, वह सदा तृप्त और प्रसन्न चित्त सिर्फ नीचे वाले पक्षी को देखता रहता था। और नीचे वाला पक्षी कभी किसी सुन्दर फल की इच्छा में रहता है कि फल पकने पर मैं उसे अवश्य खाऊँगा, परन्तु हवा का झोका जोर से चलने पर जब वह फल पकने से पहले ही नीचे गिर जाता था, तब वह बड़ा उदास होता था। और जब मीठा फल मुख में पड़ता था, तो फूलने लगता था,अगर कड़वा कचा फल खा लेता था, तो विलाप कर निराश हो जाता था। उसकी नजर जब अपने ऊपर चोटी वाले पक्षी पर पड़ती थी कि वह कैसा बेचाह बेपरवाह बैठा

हुआ है, मैं भी उस से मिल कर अपने दुःखों का अन्त करूं। फिर तो ऊपर वाले पक्षी के साथ मिलने की आशा उसे बड़ी व्याकुल करने लगती थी। जब वह वृक्ष के मीठे खटे फल खाने की इच्छा त्याग कर और डाली डाली पर घूमने का मोह छोड़ कर सीधा ऊपर उड़ने लगता है, तब वहां पहुँचते ही उस के आश्चर्य की हद ही नहीं रहती कि मैं तो इसी चोटी पर बैठे हुए पक्षी का ही प्रतिबिम्ब मात्र हूँ और उससे अपने को अभेद अनुभव करने पर आप भी उस वृक्ष के फलों की चाह से बेचाह बेपरवाह हो जाता है। ठीक इसी प्रकार इस शरीर रूपी वृक्ष में दो पक्षी कौन हैं? यानी एक साक्षी आत्मा और दूसरा उसका प्रतिबिम्ब रूपी जीव जो अन्तःकरण में प्रतीत हो रहा है। परन्तु साक्षी आत्मा तो सदा सम्पूर्ण शरीर के भोगों से अभोक्ता बेचाह बेपरवाह विराजमान रहता है। और प्रतिबिम्ब रूपी जीव अन्तःकरण की वासनाओं से मिल कर शरीर रूपी वृक्ष के अंदर अनेक भोग भोगने की आशाओं को रखता हुआ कभी इन्द्रियों के अधीन; कभी मन के हर्ष शोक रूपी खटे मीठे फल खाने में और कभी बुद्धि के हानी लाभ में बेचैन रहता है। जब वेदांत के उपदेश से जीवाभास की दृष्टि अभिमान से परे उस साक्षी आत्मा की तरफ जाती है कि वह कैसा अकर्ता अभोक्ता अपनी महिमा में सदा निश्चिंत स्थित है। तब जीव में आत्मा के अखण्डता का अभ्यास बढ़ने लगता है। और विवेक वैराग के बल से शरीर मन इन्द्रियों के विषय भोगों में गिलानी कर निज साक्षी आत्मा से जा मिलता है, तब जीव के आश्चर्य की हद नहीं रहती क्योंकि इसे अनुभव होने लगता है कि मैं तो इस आत्मा का ही आभास मात्र प्रतिबिम्ब हूँ। जैसे सूर्य का प्रतिबिम्ब तलाब से

निकल कर सूर्य से जा मिले, तैसे जीवाभास अन्तःकरण रूपी तलाव के सम्पूर्ण गुण स्वभावों से निकल कर, जब आपने निज साक्षी आत्मा से एक हो कर रहता है, तब उसे ज्ञात हो जाता है मैं जीव कैसे बना था यह मुझे मालूम होगया। तब कहा है–

दिया आपने खुदी को जो हमने उठा,
वो जो परदा था बीच में अब न रहा।
रहा परदे में अब न वो परदे नशीन,
बस सिवाय उसी के, और न रहा॥

जैसे दर्पण में दिखाई देने वाले प्रतिबिम्ब की कोई अलग हसती नहीं होती, वैसे अन्तःकरण में खुदी अभिमान करने वाले जीव को कोई वास्तविकता नहीं होती, जब तक खुदी को मिटा कर खुद आत्मा का ज्ञान प्राप्त न करे, निज आत्मा के ज्ञान विना यह जीव उस लकड़ी के कोयले के समान है जो अग्नि के सम्बन्ध कर प्रकाशित होता है, नही तो बुझ जाता है। तैसे यह जीव भी आत्माका प्रतिबिम्ब होनेकर चेतन प्रतीत होता है। और थोड़ी सी विषय वाशनाओं को भोग कर फिर गहरी सुखोपति अवस्था में लीन हो जाता है, फिर जागने पर चेतन होने की दावा करता है। ये हो परतन्त्रता है। तब कहा है--

न थी हाल की जब हमें अपनी खबर,
रहे देखते औरों के ऐबो हुनर।
पड़ी अपने गुनाहों पर जब नजर,
तो निगाह में कोई बुरा न रहा॥

जैसे बरफानी हिमालय आदि पहाड़ों पर जब सूर्य उदय होता है, तब जो बरफ पिघल पानी हो कर नदी नालों के रूप में बहने लगती है, तो सूर्य का प्रतिबिम्ब उस पानीमें खुद ब खुद दिखाई देता है। चाहे वो सूर्य से अलग नहीं है, तो भी जुदा सा प्रतीत होता है। ठीक इसी प्रकार सतिचित आनन्द सूर्य प्रकृति रूपी बरफानी पहाड़ों पर जब अपने चेतन प्रकाश कर हलचलें पैदा करता है, तो प्रकृतिमें जो शुद्ध सतोगुण अंश का कार्य अन्तःकरण है, उस में चेतन का आभास, याने जीवपना जाहिर होने लगता है। परन्तु उसके आधीन कुछ नहीं होता तो भी कहता है मैं शरीर को बनाता हूं, प्राणों को चलाता हूं और इन्द्रियों से भोग भोगता हूँ, फिर समय पर प्रत्यक्ष देखता है कि मेरे बस में कुछ भी नहीं। क्योंकि मनुष्य के भीतर दो प्रकार की चेतनता है. एक मुख्य साक्षी आत्मा रूप सूर्य की, और दूसरी चिदाभास रूप जीव की।

जब तक जीव अपने असली आत्म-स्वरूप का विस्मरण कर नकली मन इन्द्रियों से मिला हुआ रहता है, तब तक शब्द स्पर्श रूप रस आदि विषयों के पीछे परेशान रहता है। जब चिदाभास अपने जीवपने का अभिमान त्याग कर साक्षी आत्मा से एक हो रहता है, तब उन्हें अन्तरमुख, मुक्त आत्मा कहा जाता है। इससे सिद्ध हुआ कि जीव साक्षी आत्मा का ज्ञान पाकर प्रवृत्ति में निर्बन्धन रहे तो उसकी खुशी अगर अन्तःकरण के स्वभावों को अपना मान कर प्रवृत्ति में बंधाइमान रहे, तो उसकी खुशी। जैसे जीव का जीना अन्तःकरण रूपी प्रवृत्ति में है तैसे जीव की असलियत निवृत्ति रूप आत्मा में है। वेदान्त कहता है कि संसार में आपको दो प्रकार के मनुष्य

देखने में आयेंगे, एक वह जिन्होंने अपने को आत्मरूप में साक्षात किया है, वो शरीर मन इन्द्रियों के प्रवृत्ति में रहत हुये भी नित्य निवृत्ति रूप में स्थित हैं, और दूसरे वो हैं जो अन्तः-करण के स्वभावों से एक हो कर शरीर मन इन्द्रियों की प्रवृत्ति के वन्धन में अपने को बांधा हुआ मानते हैं।

जैसे उत्तराखण्ड में वन्दरों को पहले कोई नहीं बांध सकता, जब तक वो अपने को आप ही बांधे हुये का भ्रम न करें, व्याध लोग तो सिर्फ एक छोटे सुराख वाले खड्डे में दो-चार फल गिरा देते हैं। बन्दर आते ही दोनों हाथ खड्डे में डालकर सारे फल निकालना चाहता है, परन्तु उस छोटे मुंह वाले गड्डे से फलों से भरे हुए हाथ कैसे निकले। इसलिए बन्दर अपने को बाँधा हुआ घोषित करने के लिए बड़ा हल्ला मचाता है, तब व्याध भी सोचता है कि जब वह खुद ही बाँधा हुआ अपने को मानता है,तो हम भी क्यों न एक रस्सा बन्दर के गले में डालदें। फिर तो बन्दर सारी आयु बन्धन में ही नाचता है और वन्धन में ही खाता पीता है। ठीक इसी प्रकार जीव को भी पहले प्रकृति का गुण स्वभाव नहीं बांध सकता, जब जब तक अपने को अन्तः करण रूपी परीछन्न खडेमें विवेक विचार रुपी दोनों हाथ डालकर कामना रूपी फलों से भर देता है, फिर अन्तःकरण से वाहर निकल नही सकता इसलिये वह जहां तहां अपने को बांधा हुआ घोषित करता है। तब दुनियां भी कहती है कि जब खुद ही अपने को बांधा हुआ कहता है तो हम भी उसको कोई न कोई मोह स्नेह रूपी रस्सा डाल कर अपने कब्जे में क्यों न कर लें। फिर तो जीव विषय वासना में सारा जीवन भूलता रहता है। तब कहा है-

दुनियां के जंगलों में यह दिल भटक रहा ।
अटका यहां जो आज, तो कल वहां लटक रहा ॥
लालच में फंस गया, कभी मोह में जा फंसा ।
छूटा यहां से आज, तो कल वहां भटक गया ॥
सिदक और यकीने बिना, दिल्बर मिले कहां ।
गो जंगलों में बरसों ही, सिर को पटक रहा ॥

जैसे जब तक सूर्य उदय नहीं हुआ तब तक दीपक के प्रकाश से ही काम चलाना पड़ता है, तैसे जब तक आत्म ज्ञान का सूर्य उदय नही हुआ, तब तक जीवरूपी दीपक की रोशनी में मन बुद्धि चित्त अहंकार के सहारे ही काम चलाना पड़ता है। अर्थात सारा दिन मन का मनन चित्त का चिन्तन और मेरे पनेका निश्चय ही होता रहता है, पर वास्तविक मैं पने का ज्ञान ही उदय नहीं हुआ। जैसे सूर्य के प्रकाश में रखा हुआ दीपक खाली दिखावे मात्र होता है, तैंसे आत्म प्रकाश में यह जीवपना खाली दिखावे मात्र प्रतीत हो रहा है।

अथवा अज्ञान वश किए हुए प्रारब्ध कर्म को पूरा करता रहता है और आत्म साक्षात्कार होने पर जीवपने की प्रवृति, कोई हस्ती नहीं रखतीं। जैसे मध्याह्न काल को सूर्य के सामने दीपक की कोई विशेष सत्ता दिखाई नहीं देती, तैसे आत्म वेता के सामने जीवपने का द्वैत सिद्ध नही होता। तब कहा है—

जहां आप ही आप हैं. वहां गैर का कुछ काम नहीं ।
जात मुतलक में कोई शिकल नहीं, नाम नहीं ॥

प्रश्न—सत्य शास्त्रों में कहीं जीव एक ही कहा है और किस जगह कहा है कि जीव अनेक हैं; इन दोनों वचनों का यथार्थ रहस्य क्या है ?

उत्तर—वेदान्त में प्रथम सृष्टि का एक ही जीव वर्णन किया है, जिसे ब्रह्मा जी कहते हैं। भगवान विष्णु जी जो व्यापक है उनके कमल याने मध्य से उत्पन्न हुआ है। फिर ब्रह्मा जी अपने ही संकल्प से अनेक जीवों के रूप में दिखाई देने लगा। जैसे हम स्वप्न अवस्था विशे आप ही अनेक रूपों में दिखाई देने लगते हैं कहीं मनुष्य, कहीं पशु पक्षी, कहीं सुखी दुखी। वैसे एक ही ब्रह्मा माया विशिष्ट संकल्पशक्ति से अनेक जीवों के रूपों में दिखाई देने लगा। जैसे स्वप्न में हम जिन जीवों को देखते हैं उनकी हमारे से अलग कोई सत्ता या सुफरती नहीं होती: वैसे ब्रह्मा के सृष्टीरूप सुपन में जो अनेक जीव दिखाई दे रहे हैं वो एक ब्रह्मा के ही प्रतिविम्ब मात्र हैं, इसी कारण किसी को भी अपनी अलग स्वतन्त्रता दिखाई नही देती। जैसे जब हम अपने सुपन से जागते हैं, तो स्वपन में दिखाई देने वाले जीव सब हमारे अविद्या के संस्कारों में लय हो जाते हैं। वैसे जब ब्रह्मा जी अपनी सृष्टी रूपसुपन से जागते हैं। तब सम्पूर्ण जीव परलय समे अविद्या में लय हो जाते हैं,फिर एक ही जीव ब्रह्मा जी अपने को ब्रह्मरूप अनुभव करते हैं।

प्रश्नः—एक ही जीव रूप ब्रह्मा ने हम अनेक जीव रूप प्रतिबिम्बों को इतने बन्धन में क्यों डाला है।

उत्तरः—हम ब्रह्मा जी के संकल्प रूप होने कर उससे जुदा नहीं है। जैसे मन का संकल्प मन से जुदा नहीं जो संकल्प जोर पकड़ता है, वो ही मन रूप हो जाता है। वैसे एक ब्रह्मा

से इस अनेक जीव भिन्न नहीं हैं जो भी जीव अपने तपस्या संयम साधन से बल बढ़ाता है तो वह ब्रह्मा जी के समान ब्रह्म लोक में जा कर निवास करता है। जैसे एक सरसों का दाना जमीन में बोने से अपनी शक्ति से हजारों दानों के रूप में उग सकता है। इस प्रकार कोई भी जीव वेद वेदांत के श्रवण मनन निध्यासन करने से ब्रह्मा जी से पहले ही विदेह मुक्त हो सकता है। अगर कोई जीव आसक्तिवश सृष्टी के वासनाओं में फंसा रहता है। तो वह ब्रह्मा जी के संकल्प समेटने पर भो मुक्त नहीं होता और परलयकाल में अपने सूक्ष्म सकारों सहित वे जीव माया में लय हो जाते हैं। जब कभी ब्रह्मा जी अपने संकल्प सृष्टी की रचना करता है। तब वह सम्पूर्ण जीव अपने कर्म सुभावों के अनुसार बरसात में मेंढ़कों की न्याई मैं-मैं तू-तू करते उत्पन्न हो जाते हैं। तब कहा है—

सोया सब नींद में आलम, देखा उन्हें ख्वाब में जालम,
नहीं उसे आपकी मालूम, जागे तब नूर न्यारा है।

उदा०योगवशिष्ठ में आता है कि एक समय असुरोंने देवताओं पर विजय पाने अर्थ अपने संकल्प से तीन महा पराक्रमी असुरों को उत्पन्न किया जिनका नाम था दाम, व्याल, कटु, उनको स्वर्ग के देवताओं ने कंई बार जीतने का प्रयत्न किया, परन्तु देवता हार ही खाते रहे। असुरों की वीरता और शक्ति का पार न पाकर देवता ब्रह्मा जी के सन्मुख जाकर सारा वृतान्त कहने लगे कि इन महा बली असुरों को कैसे जीता जाये ?

ब्रह्माजी ने उत्तर दिया कि इनके अजीत होने का मूल कारण अभिमान का न होना है। और न इन में कर्ता भोक्तापने के विचार ही हैं कि हम देवताओं पर विजय कर कोई स्वर्ग का सुख

भोगें और न इनको युध्द में परायय होने की कोई चिन्ता ही है। इसलिए अगर तुम इन असुरोंमें अहंभाव उत्पन कर सकें अथवा युध्द की हार-जीत का हर्ष-शोक, मान अपमान पैदा कर दें तो वो शीघ्र ही जीत जाएगें। फिर देवताओं ने ऐसा आशय हृदयमें रख'कर तिन असुरों से युद्ध करना शुरू कर दिया अर्थात् जिस समय वो असुर दाम, व्याल, कटु देवताओं पर हमला करना शुरू करें तो देवता उनको विजयी कहते हुए युद्ध का मैदान छोड़ कर चले जाएं और थोड़ी देर वाद उन असुरों को आकर ललकारें और उनको कायर डरपोक कह कर अपमान करें। जब उन्हें जोश आने लगे, तव देवता उनकी प्रशंसा करते हुए गायब हो जायें। इस प्रकार धीरे-धीरे उन तीनों असुरों में हर्ष-शोक अभिमान आदि उत्पन्न होने लगे और वो अखण्ड आत्म सत्ता से हटने लगे। तव उनको यह जीव भाव का भ्रम होने लगा कि हम कितने बड़े बलवान हैं जो हमारे भयसे देवता पराजय होकर कहीं से कहीं भाग रहे हैं। अव हम क्यों न स्वर्ग पर अधिकारकर उत्तम भोगों को भोगें ?

इस प्रकार जब वह कर्ता भोक्तापने के पिंजरे में तुच्छ कामनाओंवश फंस गए, तब देवताओं को उन पर विजय पाने में कोई देर ही न लगी। परन्तु उन असुरों को हरिख शोक राग-द्वेष और विषयवासनाओं वश अनेक प्रकार के जन्म धारण कर भारी कष्टों को भोगना पड़ा।

तात्पर्य क्या है कि यह संकल्परूप जीव निहसंकल्प आत्मा के ज्ञान बिना अनेक संकल्पों को करता हुआ अनादि काल से इस जगत में भ्रमता रहता है।

प्रश्नः—किन शास्त्रों में जीव को अनादि किस कारण कहा गया है ?

उत्तर--जब तक आत्मा का अज्ञान है तब तक जीवपना निवृत्ति नहीं होता। इसलिये जीव को अनादि शांत कहा गया है, अर्थात् आत्मसाक्षात्कार होने पर जोवपना उसी वक्त शांत हो जाता है। जैसे किसी पर्वत की कन्दरा में अन्धकार हजारों बरसों से रहता आया हो, परन्तु प्रकाश करने पर वो उसी वक्त शांत हो जाता है। वैसे अनादि काल के अज्ञान कर यह जीवपना रहता आया है और अनेक जन्मों में कर्मों के अनुसार सुख-दुःख भोक्ता चला आ रहा है, जब मनुष्य जन्म में आकर ब्रह्मवेत्ता गुरू द्वारा ज्ञान का प्रकाश पाता है. तब उसी वक्त ही जीवपने से मुक्त होने का परम लाभ प्राप्त हो जाता है। तब कहा है-

पालिया जो था कि पाना, काम क्या बाकी रहा।
जानना था सोई जानया, काम क्या बाकी रहा।।
लाख चौरासी चक्कर से, थक कर खोली कमर।
अब रहा आराम पाना, काम क्या बाकी रहा।।

वेदान्त कहता है कि मनुष्य को जीव बने रहने में स्रक मन इन्द्रियों के अधीन होकर क्षणभंगुर विषय भोग कर्मों अनुसार भोगने पड़ते हैं और आत्मसाक्षात्कार करने पर नित्य निर्विषय सुख की प्राप्ति होती है। तात्पर्य क्या है कि मनुष्य जब तक जीव बना रहता है तब तक अध्यासवश यही कहता रहता है कि आंखों कर देखना ही मेरा देखना है कानों कर सुनना ही मेरा सुनना है और जिह्वाकर रस लेना मेरा रस लेना है

परन्तु जब अपनी आत्मा का ज्ञान प्राप्त करता है तो उसी वक्त कहता है कि देखने का देखना मैं हूँ, सुनने का सुनना मैं हूँ, मैं किसको देखूं किसको सुनूं और किसका हर्ष करूं किसका शोक करूं। तब कहा है-

कहना सुनना देखना, होइ रहयो जब आप।
सहजे ही चिद रूप में, मगन भयो तजताप ॥

जैसे दर्पण में पड़ने वाला मुखाभास जब उलट कर अपने मुख की ओर देखने लगता है, तो समझो अपनी ही असलियत को पाता है, वैसे अन्तःकरण में पड़ने वाला जीवाभास जब उलट कर अपने आत्मा की ओर देखने लगता है; तब वो ही रूप हो जाता है और उसके जीवपने का अभिमान निवृत्ति हो जाता है। फिर आठों याम उसका आत्म-पालन का अभ्यास सहज ही बढ़ने लगता है।

॥ ॐ तत्सत् ॥
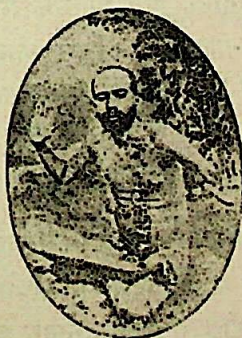
॥ ओ३म् जय सच्चिदानन्द ॥

आत्म-पालन

प्रश्न—हे भगवन ! जब आत्मा कर ही सब शरीर मन इन्द्रियों का पालन हो रहा है, तब आप आत्म पालन किसे कहते हैं ?

उत्तरः—जब यह जीव भोक्तापने के भारी भ्रम को त्यागकर अपने अभोक्ता आत्मा का सब वर्ताव में सावधान होकर स्मरण, चिंतन करता रहता है, इसी का नाम आत्म-पालन है। जैसे शरीर का पालन-पोषण अन, जल वायु द्वारा होता है वैसे आत्म पालन वेदांत के श्रवण, मनन और निध्यासन से होने लगता है। अर्थात दिन प्रतिदिन देहाध्यास को मिटाना और आत्मक निश्चय बल को बढ़ाना इसका नाम आत्म-पालन है। जिस कारण विषय भोग रूप प्रवृत्ति से अपने को नित्य निवृत्ति रूप मानता हुआ आत्म वेत्ता सदा अपने को तृप्त रूप में अनुभव करता है, फिर उसमें किसी प्रकार की भी आत्म-दुर्बलता नहीं रहती।

प्रश्नः—आत्मिक-दुर्बलता किसे कहते हैं ?

उत्तरः—जो मनुष्य दिन रात अपने को, मैं देह हूँ, मैं दीन हूँ, मैं वर्ण आश्रम हीन हूँ, ऐसा मानता हुआ मन इन्द्रियों के

अधीन जीवन विता रहा है, इसका नाम आत्मदुर्वलता है।

प्रश्नः—इसी आत्मिक दुर्वलता से मनुष्य की क्या हानि होती है ?

उत्तरः—वह मनुष्य समझो अपनी आत्मा की हिंसा कर रहा है, जो सारा दिन शरीर आदि के आराम और मान सन-मान के पीछे लगा रहता है, परन्तु आत्मा के विषय में थोड़ा भी ज्ञान नहीं रखता।

प्रश्नः—नित्य अजर-अमर आत्मा की हिंसा कैसे हो सकती है ?

उत्तरः—जैसे शास्त्रों में किसी महा पुरुष का अपमान करना या झूठा कलंक लगाना उसे हिंसाके समान दोष कहा गया है। वैसे नित्य शुद्ध साक्षी आत्मा को सुखी-दुःखी विषयी मान कर उसे जन्ममृत्यु का कलंक लगाना भारी हिंसा दोष के समान है। जिसका फल इस लोक और परलोक में भोगना पड़ता है। अर्थात इस लोक में तो सारा जीवन शरीर मन इन्द्रियों के आधीन अपने को कर्ता भोक्ता मान कर व्यतीत करता है और परलोक में उन शुभा-शुभ कर्मों के अनुसार अनेक जन्म मृत्यु रूपी कष्टों को भोगता रहता है। तब कहा।

आत्म भिन जो-जो किया, सो-सो भ्रम को मूल।
कायक वाचम मानिसक, सब अपनी है भूल॥
सब अपनी है भूल, मोक्ष हित करे जो करनी।
ज्यों रवी चाहे तेज, जावे खद्रूत की शरणी॥

कहे गिरधर विराय साधे सो सभी अनात्म ।
सुने सिद्धि नित्य मुक्ति, है तूँ आत्म ॥

अर्थात अपने आत्मा के जाने बिना जो-जो तुमने किया वो सब भ्रम का कारण हुआ ! शरीर, मन आदिकों का जो आत्मा के अज्ञान कर पालन किया, वो तुम्हारी भारी भूल सिद्ध हुई और मोक्ष के लिए आत्मज्ञान के सिवाय अनेक प्रकार के उपाय तुमने किये, वे ऐसे निकले जैसे सूर्य प्रकाश के लिए तुच्छ खद्दूत की खोज में निकले । इस प्रकार आत्म-पालन के बिना जो भो तुमने किया, वो अनात्मा ही सिद्ध हुआ और तुम अपने को असिद्ध शक्ति हीन अनुभव करने लगे ।

उदा –एक आदमी ने शेर का छोटा बच्चा बड़े प्रेम से पाला, आप भूखा रह कर भी उसे बहुत कुछ खिलाता था, फिर तो जल्दी ही शेर का बच्चा बड़ा जोर पकड़ गया । एक दिन वह आदमी सोया हुआ था और शेर का बच्चा उसका हाथ चाट रहा था, तो अकस्मात दांत लगने से उसके हाथ से खून निकल आया । इतने में वो आदमी जाग उठा और शेर के बच्चे से अपना हाथ छुड़ाने लगा पर वो कब छोड़ता है । कितनी कोशिश करने पर भी शेर बड़-बड़ कर उसका सारा हाथ चबा गया । ठीक इसी प्रकार जो आदमी अपना आत्म पालन छोड़ कर सिर्फ मन इन्द्रियों के पालन पोषण में लगा हुआ है, उसके मन इन्द्रियां कब्जे से बाहर निकल जाते हैं और अपने में आत्मिक बल न होने के कारण सारा जीवन उनके अधीन खो डालता है।

वेदांत कहता है कि अगर आप सब दुर्बलताओं से ऊपर उठना चाहते हैं तो आत्म-पालन करना सीखो। आज कल

हमारे में उलटापना घर कर गया है जो आत्म पालन से सौ गुनां अधिक शरीर मन इन्द्रियों के पालन में लगे हुये हैं। जैसे एक आदमी भांग के नशे में घड़ी घड़ी सिर पर हाथ फेर रहा था किसी ने पूछा ये क्या कर रहे हो? उसने उत्तर दिया कि सर से टोपी उतारना चाहता हूँ। वास्तव में उसके सिर पर टोपी थी ही नहीं तो उतरे कहां से। वैसे ही अविद्या के नशे में आदमी दिन रात इतनी चिन्ता में लगा हुआ है कि मैं अपनी आत्म का दुख दूर करना चाहता हूँ। पर वास्तविक कर आत्मा में दुख है ही नहीं तो दूर कहां से होवे। गीता में भगवान ने अर्जुन को कहा कि सब का आत्मा सत चित्त आनन्द रूप है फिर भी हम नहीं समझते तो यह आविद्या का प्रभाव है जिसकर हम विपरीत वर्ताव पसंद करते हैं। जैसे कोई मनुष्य ठंडी के कारण घर से सुवाटर पहन कर निकला हो तो भी किसी दुकानदार को कहने लगा कि मेरे पास सुवाटर नहीं है। कोई गरम सुवाटर पहिनाओ। दुकानदार ने देखा कि यह तो उलटा बोल रहा है, वह सुवाटर तो इसने पहले ही पहना हुआ है। ठीक इस प्रकार मनुष्य की आत्मा पहले ही सुख रूप तो भी आविद्यावश विषय भोगों की बाजार में सुखी होना चाहता है। जब किसी महा पुरुष के समीप जा कर कहता है कि मैं सुखी होना चाहता हूं, तब वह अविद्या के निवृत्ति का उपदेश देकर कहता है कि तुम्हारा आत्मा पहले ही सुखरूप है, तुम आत्मा के सुखी करनेके बदले उसका यथार्थ ज्ञान प्राप्त करो। तब कहा है।

ज्ञान निष्टा की जानत ज्ञानी।
और सकल जन भर्म भुलानी॥

जपी तपी और ध्यानी ।
विवेक वैराग आगे है ठाडे ॥
मुक्त न जानी निशानी ।

वेदान्त में आत्म पालन करने वालों को देवता और सिर्फ शरीर इन्द्रियों के पालन पोशन करने वालों को असुर नाम से वर्णन करा गया है। क्योंकि वह मनुष्य आत्मक पूजन छोड़ कर हाड चाम के पुतले का पूजन करने लगा है।

ब्रह्मवेता याज्ञवल्क मुनि अपने मेत्री नामा स्त्री के प्रित उपदेश के आम्रभ में यही कहा था कि हे मेत्री ! जो पति स्त्री को आत्म दृष्टि से न देख कर देह दृष्टि से देखता है उसके लिए स्त्री मोह बन्धन का कारण होती है। और जो स्त्री पति को आत्मा दृष्टि से नहीं देखती उसके लिये पती स्वार्थ वश बन्धन रूप है। इस प्रकार पिता पुत्र को और पुत्र पिता को, जो आत्म दृष्टि से नहीं देखते, वह एक दूसरे के लिये बन्धन रूप हो जाते हैं। क्योंकि आत्म पालन के बिना मनुष्य में मोह ममता का पालन बढ़ने लगता है, जिस कारण गृहस्थ आश्रम भाड़ी बन्दीगृह बन जाता है। तब कहा है।

बिना आत्म ज्ञान, ममत ना मिटे मनकी,
चाहे सौ साधन करे, पढ़े वेद पुरान।
गीता में भगवाग अर्जुन को ऐसे कहा ॥

उदा:—किसी ब्राह्मण ने अपने बालक को बड़े मेले में जाता हुआ देखकर गले में एक सुन्दर माला पहिना दी और कहा इस माला को भूलना मानों अपने को भूल जाना है। फिर तो बालक की माला में बड़ी प्रति बढ गई। एक समय मेले में रात को सोया हुआ उस बालक के गले से किसी ने माला उतार ली। सुबह को उठते ही बालक माला माला करता हुआ उसे ढूंढने निकला। जब उसी माला को एक गधे के गले में पहने हुए देखा तो भर्म वश उसे ही माला वाला मान कर आगे कर दिया और आप गधे के पीछे पीछे घर को चलने लगा।

यह देख कर घर वालों ने दरवाजा बन्द कर दिया लड़के ने आवाज दी कि दरवाजा खोलो, तो अन्दर से आवाज आई कि गधे को यहां से हटाओ मगर लड़का कहने लगा कि पहले माला वाला गधा आएगा और उसके पीछे मैं, क्योंकि माला जो उसको पड़ी है। इस प्रकार न बालक गधे को पीछे हटाता है न घर का दरवाजा खुलता है। ठीक इसी प्रकार मनुष्य को इस जगत रूपी जलसे में आने के समय आत्मा के मैं पने का सोमान प्राप्त हुआ है परन्तु अवद्या की नींद में वो मैं रूपी माला अहंकार ने इस शरीर रूपी गधे को पहना दी जिस कारण मनुष्य उसी अज्ञान वश इस शरीर को ही मैं मान कर आगे कर दिया है इसका ही मान सन्मान चाहता है। अर्थार्थ पहले शरीर पालन पीछे आत्मा का ज्ञान, अगर मोक्ष के दरवाजे पर याने सत्संग साधन में आता है तो भी पहिले शरीर का आराम पीछे आत्मा का ज्ञान परन्तु परमार्थ से आवाज आती है कि पहले इस शरीर से मैं पने को हटाओ। सो जब तक इस आदेश

का पालन नहीं होता है तब तक न मोक्ष का दरवाजा खुलता है न मनुष्य जन्म सफल होता है। तब कहा है।

> क्यूं न पाया गुरु ज्ञान, जब देह में आराम था।
> क्यूं न क्या कुछ दान, जब घर में सामान था॥
> खुली थी बाजार, सौदा ना क्या।
> हो गया दर, बंदि, गाफ़ल रो दिया॥

वेदान्त कहता है कि अपनी आत्मा पर निर्भर रहना सीखो तो कोई भी संसार का प्रवर्तन आप को चलायमान न कर सकेगा, जैसे तैरना सीखा हुआ मनुष्य पानी में अपने आप पर निर्भर हो कर तैरने लगता है वैसे आत्म पालन का अभ्यास सीखा हुआ जज्ञासु संसार के किसी भी पदार्थ पर निर्भर न हो कर अपने आत्मक बल पर ही सफलता पाता है। गीता में ऐसे व्यक्ति को स्थत प्रिज्ञ के नाम से वर्णन करा गया है। तब कहा है।

> तोरे समझो आज, तोरे समझो जन्म अनेक।
> जब समझें तब समझलो, तुलसी आत्म एक॥

❀ ॐ ❀
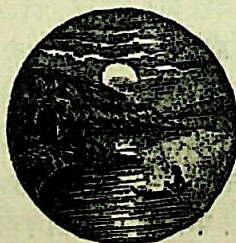
निज निवृत्ति का ज्ञान
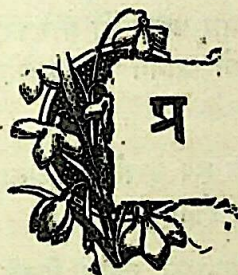
प्रश्न—हे भगवन ! शरीर मन आदकों की प्रवृत्ति के बीच में हम अपने आत्मा को नित्य निवृत्ति रूप में कैसे अनुभव करें ?

उत्तर—वेदांत में निवृत्ति तीन प्रकार को वर्णन की गई है, एक बहार से निवृत्ति याने शरीर इन्द्रियों से कुछ भी न करना चुप चाप बैठे रहना, दूसरी चित के चिंत्वन रूप प्रवृत्ति को ध्यान योग के बल से निवृत्ति करना, और तीसरी सहज निर्वृत्ति अपने आत्म साक्षात्कार से प्राप्त होती है। जिसमें प्रवृत्ति का लेश मात्र भी नहीं है क्योंकि उस कर सर्व प्रकार के प्रवत्तियों का अनुभव होता है इस लिए वो सुतह सिद्ध निवृत्ती रूप है।

प्रश्न—अनुभव स्वरूप किसे कहते हैं ?

उत्तर—जो मन बुद्धि आदिकों को जानने वाला और जिसे मन बुद्धि कर जाना न जाए, उसे अनुभव स्वरूप कहते हैं। जैसे

साधारण अवस्था में लोग कहते हैं कि मैं शरीर मन इन्द्रियों को जानता हूँ और उनके सुख दुःख को पहिचानता हूँ, फिर भी कहते हैं कि हम अपने आपको नहीं जानते, ये ही बड़ा आश्चर्य है।

प्रश्न—उस अपने आपको कैसे जाना जाए ?

उत्तर—जब जानन हार ही आप है, फिर आपको आप किस कर जानेंगे ? अगर तुम अपने को और किसी उपाय कर जानने का हठ करोगे, तो उसी प्रवृत्ति अनुसार अपने को मानकर किसी भ्रम में पड़ जाओगे। क्योंकि अपने जानने की इच्छा आपको परीछिन्न बना देगी।

प्रश्न—उपासक लोग जो भगवान के रूप देखने का यत्न करते हैं, क्या उन्हें भगवान का दर्शन नहीं होता ?

उत्तर—उन्हें भावना अनुसार भगवान का दर्शन किसी न किसी लीला विग्रह प्रवृत्ति रूप का ही होता है, परन्तु परमात्मा के वास्तविक निवृत्ति रूपका दर्शन तो अपने आत्मा से अलग नहीं हो सकता। तब कहा है।

कोई सूरत मुझे माने, कोई मुतलक पहचाने है।
कोई खालक पुकारे है, कोई कहता है यह इन्सा है।
मेरी हस्ती में यकताई, दुई हरगिज नहीं बनती।
सवाइ मेरे न था होगा, यह हर्फ आरफो के है॥

उदाहरण—एक समय भगवान श्री कृष्णचन्द्र ने देखा कि मेरे को गोपीए और गुवाल मक्खन चोर मटिका फोर और दूध दही खाने वाला कह कर बड़े कलंक लगाते हैं। उन्हें सावाधान करने के लिए एक दिन भगवान वन से अंतरध्यान हो गए। गोपी और गुवाल जगह जगह खोजते भगवान का नाम लेकर पुकारते थक गए, परन्तु उन्हें भगवान का दर्शन नहीं हुआ फिर तो वह उन्हें भगवान के लिए लाया हुआ मक्खन, दही, निरास हो कर वापस ले जाना पड़ा। जब दूसरे दिन भगवान को बन में गऊएँ चराते देखा तो सब गोपी गुवाला आ कर कल न मिलने का कारण पूछने लगे, तो भगवान ने उत्तर दिया कि मेरे गुरू दुरवाशा ऋषि जमुना के उस पार आए हुए हैं, मैं उनके दर्शनार्थ वहां गया था फिर तो सब गोपी गुवालों ने ये निश्चय कर लिया कि हमें भी अवश्य वहाँ चल कर दर्शन करना चाहिए। कल को सभी सुन्दर भोजन बना कर दही मक्खन साथ लेकर जमुना के उस पार जाने के लिए त्यार हो कर आए। भगवान से पूछा कि हम जमुना नदी के उस पार कैसे जाए वहाँ कोई नाव तो थी नहीं। तब भगवान ने कहा कि तुम जमुना जी के सामने जा कर कहो कि अगर भगवान कृष्ण निरआहरी है,कभी दूध-दही-मक्खन खाया ही नहीं और गोपी गुवालों से कोई लीला की ही नही तो हमें उस पार जाने का रास्ता देओ। यह सुन कर सब चकित रह गए कि ऐसी उलटी प्रार्थना पर हमें जमुना जी रास्ता कैसे देगी ? आखिर में कितने गुवाल सहमत हो गए कि चलो तो सही, सच्च झूठ का पता वहां लग जाएगा जब जमुना जी के किनारे सब मिल कर बड़े प्रेम से कहने लगे कि हे जमुना जी, अगर श्री कृष्ण सदा निरआहरो है किसी गोपी

गुव ल से छुहे तक नहीं तो हमें उस पार जाने का रास्ता देओ। फिर तो आखें खोलने की देर थी, आधी जमुना इस तरफ हो गई और आधी उस तरफ, बीच के रास्ते पर गोपी गुवाल आ-श्चर्य करते हुए उस पार पहुँच गए। वहाँ दूर से देखा तो दुरवाशा ऋषि अकेले बैठे हुए हैं, फिर तो समीप आ कर चरणों में प्रणाम कर सब कहने लगे कि पहले हमारा भोजन स्वीकार कीजिए। दुरवाशा ऋषि ने कहा कि तुम घबराओ मत, मेरे को इतनी भूख है जो तुम्हारे भोजन के भरे हुए सब बर्तन खाली कर देऊँगा, यह सुन कर गोप-गुवाल बड़े प्रसंन्न हुए। और दुर-वाशा ऋषि भी धीरे धीरे सारा भोजन खा पी गए और सत्संग वार्तालाप करने के पश्चात, जब सायंकाल होने को आया तब गोपी गुवालों को आ कर पार जाने की चिन्ता लगी क्योंकि वे भगवान से लोट कर आने का उपाय पूछ कर ही नहीं आए थे। जब दुरवाशा ऋषि को अपना सारा वर्तान्त बता कर पूछने लगे कि अब हम उस पार कैसे जायें, तब दुरवाशा ऋषि ने कहा कि अब जमुना जी को यह जा कर कहो कि अगर दुरवाशा ऋषि कभी भी कुछ खाते पीते नहीं सदा अभोक्ता स्वरूप हैं, तो हमें पार जाने का रास्ता देओ। यह सुन कर सभी गोपी गुवाल ऋषि की ओर ताकने लगे कि अभी अभी दस आदमियों का भोजन खा कर किसने बर्तन खाली कर दिए! ऋषि ने मुसकरा कर कहा कि अगर तुम्हें विशवास नहीं आता तो और कोई उपाय पार जाने का नहीं है, फिर तो गोपी गुवाल हठ हार कर ऋषि को प्रणाम कर जमुना जी क किनारे आ खड़े हुए और यही प्रार्थना करने लगे, कि हे जमुना जी! अगर दुरवाशा ऋषि सदा निरआहरी है खाने पीने को छुहते तक नहीं तो हमें उस पार जाने

का रास्ता दोओ। इतने में जमुना जी आधा इधर आधा उधर हो गई। सब गोपी गुवाल दौड़ते हुए उस पार पहुँच कर परस्पर कहने लगे कि ये सत्य है या वो सत्य है ? यह गोप्य रहस्य समझने अर्थ कलि को सब भगवान को बन में चारों ओर घेरे हुए बैठ गये कि बताओ कि आप अभोक्ता कैसे हैं और दुरवाशा ऋषि निृआहारी कैसे हैं ? जिस पर भगवान ने मार्मिक वचन कहे कि तुम्हें अपने अभोक्ता आत्मा का ज्ञान नहीं, इस लिए सारा दिन शरीर मन इन्द्रियों की प्रवृत्ति के पीछे लगे हुए हो और उनका खान पान स्नान क्रिया सब अपने में मानकर और मेरेको भी भोक्ता दूध दही खाने वाला जानकर भाड़ीभ्रम में पड़े हुए हो। वास्तिव में सब की आतमा नित्य तृप्त रूप है, जिसक ज्ञान प्राप्ति करने से इन शरीर मन आदकों का भोक्ता-पना तुम्हें कभी भी छु नहीं सकता, सदा अपने निृविषय सुख में स्थित रहोगे। इतना उपदेश श्रवण कर सब गोपी गुवाल आत्म जाग्रती में आ गए और समय-समय पर श्री भगवान से निज निवृत्ति रूप आत्मा का ज्ञान सुनकर प्रवृत्ति के बीच में रहते हुए भी अपने को सदा निवृत्ति रूप में अनुभव करने लगे। तब कहा है।

रहता सभी के संग, पर करता न किस का संग है ॥
है रंग आत्म में रंगा, चढ़ता न कचा रंग है ॥
है आप में नित्य युक्ति, और बाहर से प्रवृत्ति है ।
है आप में ही निव्रति, सो इच्छा बिना ही मुक्ति है ॥

प्रश्न—हे भगवन ! इस प्रवृत्ति रूप शरीर मन इन्द्रियों के बीच में हम अपने आत्मा को अक्रिय और निवृत्ति रूप कैसे अनुभव करें ?

उत्तर—वेदान्त कहता है कि निज निवृत्ति रूप आत्मा के अपरोक्ष ज्ञान होने पर आप हजारों प्रवृत्यों के बीच में रहते हुए भी अपने को आकाश वत असंग अनुभव कर सकते हैं। जैसे निर्मल आकाश से चाहे कितने भी बादल गरजें, वायु के तूफान चलें, समुद्र के तरंग उछलें, पृथवी और पहाड़ हिलने लगे तो भी आकाश सदा अक्रिय ज्यों का त्यों स्थित रहता है। इसी प्रकार नित्य निवृत रूप आत्मा के समीप शरीर मन बुद्धि की अनेक क्रिया होती रहें, और प्रारब्ध भोग अनसवार कितने ही हानि लाभ संजोग वियोग होते रहे तो भी साक्षी आत्मा ज्यों का त्यों अक्रय सदा अपने महिमा में स्थित रहता है। तब कहा है।

बढ़ गया बाल तो क्या परवाह ।
उतर गई खाल तो क्या परवाह ॥
मिल गया माल तो क्या परवाह ।
हुए कंगाल तो क्या परवाह ॥

प्रश्न—हे भगवन ! जब आत्मा एसा अक्रिय है तो फिर उसको क्रियावान प्रवृत्ति रूप संघात में क्या आवश्यक्ता है ?

उत्तर—अगर आप में अक्रय साक्षी आत्मा न हो तो क्रिया करन वाले मन आदकों को कौन जाने जैसे महा आकाश

क्रिया रहित जहाँ तहाँ मौजूद न हो तो संसार की कोई भी हलचल सब बन्द हो जाए। तात्पर्य क्या है जैसे संसार को सिद्ध करने अर्थ अङ्ग आकार रहित आकाश की परम आवश्यक्ता है। तैसे सम्पूर्ण देह धारणों के मन इन्द्रय आदकों की प्रवृत्ति को क्रियावन्त करने अर्थ अक्रिय निर्विकार आत्मा के होने की परम आवश्यक्ता है। जैसे साफ दर्पण बाहर की सम्पूर्ण हलचलों को अपने में दिखाता हुआ आप किसी भी हलचल कर चलायमान नहीं होता। वैसे साक्षी आत्मा मन आदकों के प्रवृत्यों को प्रकाशता हुआ सदा अपने निवृत्ति रूप में ही स्थित रहता है तब कहा है—

मैं इंद्री न हीं मम इंद्री, मैं साक्षी कूटस्थ असंग।
भोगे विषय या त्यागे इंद्री, इनते मेरो नाही संग॥
ये निसचय ज्ञानी को जाते, कर्ता दीखे करे न अंग॥

अर्थात न मैं इन्द्री हूं न मेरी इंद्रये हैं यह तो मशीन की तरह सब आपों अपना कार्य कर रही हैं। मैं तो इनका साक्षी अक्रय कूटस्थ याने कभी न बदलने वाला असंग आत्मा हूँ। संसार में जो भी पदार्थ संगवान और क्रियावान दिखाई देते हैं वो प्रत्क्षण बदलते अन्त में निष्ट हो जाते हैं। जैसे मशीनरी का हर एक पुरज़ा क्रिया करता गसता हुआ अन्त में क्षीण हो जाता है। वैसे प्रवृत्ति करने वाले ये शरीर मन इंद्रया आदक जो है वो टूट फूट कर अन्त में क्षीण हो जाने वाले हैं, परन्तु उनमें निवृत्ति रूप अक्रय आत्मा है, जो सदा एक रस

अजर अमर रहता है। ऐसे अनुभव करने वाले को गीता में स्थित प्रिज्ञ कहा गया है।

प्रश्न—ऐसे असंग आत्मा को मन इंद्रयो कर क्यूँ नहीं जाना जाता ?

उत्तर—वेद की श्रुति कहते है कि यह निर्विकार आत्मा मन इंद्रियों का विषय नहीं है, क्योंकि मन इंद्रियों को जगत के शब्द, स्पर्श, रूप, रस आदकों का ही ज्ञान होता है। परन्तु आत्मा तो न शब्द है न रस है वह तो सम्पूर्ण कल्पनाओं से परे है। तब कहा है।

बे चून बे नमून कहते, जिसका हर्थें न पाइ।
देखन में नहीं आता हादी, ने दियो बताइ॥

उदा० एक महापुरुष अपने शिष्य को अति इंद्रय आत्मा का उपदेश देते हुए कहा कि इस नारंगी को पहचानते हो ?

शिष्य ने कहा भगवन मैंने नारंगी को बहुत दफा देखा है, इसका रूप तो प्रत्यक्ष प्रतीत होता है। गुरु ने कहा ये तो नेत्रों का विषय नारंगी के रंग का ज्ञान हो रहा है, बाकी नारंगी के असलियत का ज्ञान तुम्हें कहां है। शिष्य ने दृढ़ता से कहा कि मैंने कई दफा नारंगी का असली रस पीया है। गुरु ने कहा ये तो जिह्वा का विषय रस तुमने पान किया है। इस प्रकार नारंगी का सुगन्ध सुपर्श आदि सब नारंगी के बाहरी विषयों का तुम्हें इंद्रियों द्वारा ज्ञान हो रहा है। इसे वास्तविक ज्ञान नहीं कहा जाता।

जैसे किसी मनुष्य के रूप को आप आंखों से पहिचाने, उसके शब्द को कानों से, सुपर्श को हाथों से और उसके सुगन्ध दुर्गन्ध को नासिकाओं से पहिचान कर आप उसे कहें कि मैंने आपको पहिचान लिया, तो वह विचारवान मनुष्य साफ कह देगा कि यह तो मेरा बाहरी हालतों का ज्ञान है, इनको मैं पहचानने वाला इनसे अलग हूं जिसका तुम्हें ज्ञान नही हुआ, क्योंकि वो इन्द्रियों का विषय नहीं है। तात्पर्य यह है कि जैसे मनुष्य के वास्तविक स्वरूप का ज्ञान मन इन्द्रियों का विषय नहीं अर्थात शब्द सुपर्श से परे निज चेतन रूप है। तैसे इस नारंगी का वास्तविक स्वरूप, रूप, रस आदकों से परे निर्विषय दृष्टा है। जिममें यह नाम, रूप आदक कलपित हैं, वैसे ही उसी साक्षी चेतन रूप में तुम्हारे शरीर मन इन्द्रियां कलपित हैं। अम्र कलपित नारंगी के विषयों का और कलपित मन इंद्रियों का, दोनों प्रकार के सम्बन्ध से असंग होने से सर्व व्यापक परमात्मा सबका आत्मा अनुभव होने लगेगा।

इस प्रकार गोप्य रहस्य ब्रह्मवेत्ता गुरु द्वारा श्रवण कर शिष्य कृतार्थ हो गया और निश्चय करने लगा कि वास्तव में मेरा ही आत्मा नारंगी आदक सारे विश्व का आत्मा है। तब कहा है—

कहूँ क्या अब आपको ए पयारे।
अविनाशी कब वाचक शब्द तुम्हारे॥
जहां गति रूप की व नाम की है।
वहां गति आज हमारे धाम की है॥

जैसे दिवाली के दिनों में बालक कागज के फानूस बना कर उसमें घोड़े हाथी लशकर की मूर्तियां लगाकर जब रात्री के समय उस फानुस के बीच में दीपक जला के रखते हैं तो उसके प्रकाश से फानूस के सारे लशकर खुद ब खुद दीपक के चारों तरफ फिरने लगते हैं। परन्तु दीपक फानूस के अन्दर ज्यों का त्यों अडोल स्थित रहता है। ठीक इसी प्रकार जगत रूपी जलसे को एक फानूस की तरह समझो। जिसमें मन के संकल्प विकल्प रूपी लशकर उसी साक्षी रूप प्रकाश के सहारे फिरते नजर आते हैं, परन्तु स्वयं ज्योति आत्मा सदा अपनी निज निवृत्ति रूप में स्थित रहता है। तब कहा है—

जो तुमको हिलाने आवे, वो खुद भस्म हो जाए।
तुम खुद की दीद खोलो, सब दूर हो बलाए॥

॥ ॐ तत्सत ॥

सत्यं ज्ञान अनंत ब्रह्म

हद में बेहद

प्रश्न—हे भगवन ! जब हमारा वास्तविक आत्मा इस परिछिन्न शरीर मन इन्द्रियों जितना नहीं है तो फिर उतना प्रतीत क्यूँ, होता है ?

उत्तर—जसे महा आकाश घट मठ आदकों जितना नहीं है तो भी उन उपाधयों में प्रतीत होने के कारण उन जितना दिखाई देता है, परन्तु उन कर महा आकाश में कोई परिछिन्नपना नहीं आ जाता। तैसे सर्वत्र पूर्ण परमात्मा इन परिछिन्न मन आदकों में आत्मा रूप होने पर उसके वेहदपने में कोई हद रूपी दीवाल नह‍ आ जाती। इसलिये आत्मा को परमात्मा रूप ही वर्णन किया गया है। वेद का महावाक्य कहता है (अय मात्मा ब्रह्म) अर्थात् तुम्हारी आत्मा हद से रहित वेहद ब्रह्म स्वरूप है।

प्रश्न—जब आत्मा अपरिछिन्न ब्रह्म स्वरूप है तो फिर हमारे में हद वाले संकल्प विकल्प क्यों उत्पन्न होते हैं ?

उत्तर—वेदान्त कहता है कि आप में मनहद वाला होने के कारण वो परिछिन्न संकल्प विकल्प उत्पन्नकर रहा है, इस लिये हर एक मनुष्य की अलग अलग प्रवृति प्रतीत हो रही है। जैसे

अघाद समुद्र में अनन्त लहरें और तरंग अलग अलग आकार और वर्ताव वाले प्रतीत होते हुए भी इससे समुद्र में कोई भेद भाव नही आ जाता।

प्रश्न—फिर मनुष्य मन के संकल्प विकल्पों कर अपने को क्यूँ बंधायमान समझता है ?

उत्तर—जब तक अविद्या के आवरण शक्ति ने जीव के वास्तविक स्वरूप का ज्ञान ढ़क रखा है, तब तक वो मन की कल्पनाओं को अपने में आरोपण कर सदा चलायमान रहता है, इस लिए मन की कल्पनाओं के आसक्ति का त्याग ही परम श्रेष्ठ त्याग माना गया है।

प्रश्न– कितने शास्त्रों में गृहस्थ आश्रम के त्याग को ही परम त्याग कहा है, और आप केवल आसक्ति के त्याग को ही श्रेष्ठ त्याग कैसे कहते हैं ?

उत्तर—यह तो भगवान ने भी गीता में अर्जुन के प्रति कहा है कि बाहर के त्याग से अन्दर के आसक्ति का त्याग ही महान त्याग है। आप सब कुछ त्याग कर किसी घने जंगल में जाकर क्यों न रहें, अगर आसक्ति धन सम्बन्ध में लगी हुई है, तो वह त्याग भारी बोझ सा प्रतीत होने लगेगा। अगर प्रारब्ध भोग अनुसार किसी वर्णाश्रम में धन पदार्थ सम्बन्ध आदकों के बीच में रहते हैं। परन्तु किसी पदार्थ के आसक्ति का परभाव नही पड़ता तो समझो आप सच्चे त्यागी हैं।

प्रश्न—आसक्ति रहित मनुष्य किसे कहते हैं ?

उत्तर—जो अपने शुद्ध आत्मा का अनुभव कर संसार सम्बन्ध में शरीर का निर्वाह मात्र मानता है, जिसका जीवनरूपी खजाना विषय भोगों की तरफ खर्च न होकर परमार्थ और पर-

उपकार में लगता है। वो मानुष अपने परिवार में ऐसा रहता है जैसे किसी के घर में आया रहती है, जो छोटे बच्चों का पालन ऐसे स्नेह से करती रहती है मानो बच्चे उसके जिगर के टुकड़े है। परन्तु जब उसकी नौकरी पूरी हो जाती है तो वहां से झट अपना बोरी बिस्तरा उठा कर दूसरे घर में चली जाती है, उसे किंञ्चित मात्र भी चिन्ता नही होती, वैसे आसक्ति रहित मनुष्य भी अपने सम्बन्धी साथियों के बीच में रहता हुआ उनके संयोग वियोग में किंञ्चित मात्र भी चलायमान नही होता। तब कहा है—

अगर यार की मरजी हुई सिर जोड़ के बैठे।
मोरा जिधर उन्हें मुंह मोड़ के बैठे॥
घर बार जो छुड़ाया तो छोड़ के बैठे।
गोदरी जो ओढ़ाई तो ओढ़ के बैठे॥
अगर शाल ओढ़ाई तो शाल में खुश हैं।
पूरे हैं वो ही मरद जो हर हाल में खुश है॥

वेदान्त कहता है कि अदृष्ठ अनुसार जिन भोग पदार्थ सम्बन्ध का आप त्याग नही कर सकते, तो उसके आसक्ति का अवश्य त्याग करो। जैसे मृत्यु से पहले कोई अपने शरीर का त्याग नही कर सकता, परन्तु निज आत्मा के ज्ञान से उसकी आसक्ति का त्याग कर उनसे बड़े से बड़े कार्य होने पर लोग उससे महान लाभ उठा सकते हैं।

उदा०—एक प्रेमी किसी विरक्त महात्मा को प्रार्थना कर घर में ले आया। उसने अपनी स्त्री को कहा कि जल्दी से एक दूध का गिलास भर कर महात्मा के वासते ले आओ। स्त्री बड़ी कंजूस थी, वह चाहती थी कि गिलास में दूध तो पड़े मगर मलाई बच जाए। परन्तु ज्यों ही गिलास में दूध डालने लगी तो अचानक मलाई गिलास में आ गिरी, तो स्त्री के मुख से हाइ निकल गई। दूध का गिलास महात्मा जी के आगे लाया गया वे थोड़े समय सत्संग वार्तालाप कर वहां से चल पड़े। तो प्रेमी ने प्रार्थना की कि यह दूध खास आपके पीने के वासते रखा हुआ है। संत ने उत्तर दिया कि यह दूध हमारे पीने योग्य नही रहा। प्रेमी ने चकित हो कर कहा कि दूध तो सुन्दर गऊ का है, और उसमें सिर्फ मीठा और इलायची डाली गई है, तो महात्मा ने मुस्करा कर कहा कि तुम्हारी स्त्री ने और भी कुछ डाला है। स्त्री चौंक पड़ी कि मैने ज्यादा से ज्यादा मलाई डाली है, विरक्त महात्मा ने कहा उसके साथ तुमने डाइ भी डाली है, जिस कारण यह दूध दूषित हो गया अर्थात् हाइ रूपी असक्ति पवित्र में पवित्र वस्तु को भी दूषित कर देती है। इस लिए आत्म निर्भर होने अर्थ मोक्ष के जिज्ञासू को सब प्रकार की आसक्तियें अपने अन्दर से निकाल कर बाहर फेकनी होंगी। तब कहा है—

धन की जिसे नहीं चाह है, नहीं मित्र की परवाह है।
आसक्ति विषयों में नहीं, प्रारब्ध पर निरवाह है॥
जो विशव को मिटया मेट कर, आप भी है मिट गया।
मिट कर हुआ फिर आप ही, संसार से सो छुट गया॥

वेदान्त कहता है आपको अहंकार की परीछिन्नता मिटाने के लिये कहीं दूर जाना नहीं है, सिर्फ ब्रह्मवेत्ताओं के इशारे की जरूरत है। जिस से मन इन्द्रियों की आसक्ति से मुक्त हो कर पूर्ण ब्रह्म स्वरूप से अपना अभेद अनुभव करना है, क्योंकि शरीर मन आदिकों के प्रवृत्ति की हद उन्हीं तक ही सीमत है, उससे परे जो असंग आत्मा है वह तो बेहद ब्रह्म स्वरूप ही है।

प्रश्न—जब हमारा आत्मा आदि अन्त से रहित है, फिर उसमें जनम मृत्यु आदि किस कारण प्रतीत हो रहे हैं ?

उत्तर—जैसे स्वप्न अवस्था में हम अनेक अनहोते आश्चर्य में डालने वाली हलचलें देखते हैं,परन्तु जागने पर हम ज्यों के त्यों ही अपने को अनुभव करते हैं, अर्थात् न हम कहीं गए थे और न हम कहीं से आए। इस प्रकार यह अविद्या रूपी स्वप्न है, जिसमें हम अपने वास्तविक स्वरूप से सोए हुए हैं। इसी कारण अपने में जनम, मृत्यु, हर्ष, शोक आदि अनेक भर्म देख रहे हैं। जब आत्म ज्ञान रूपी जाग्रती में आते हैं तो फिर अपना अजर अमर पना प्रत्यक्ष अनुभव होने लगता है तब कहा है—

जन्म मरण सुपने की भावना, जब जागा तब भागा है।
एकोही एक मिला अबिनाशी, जब उलट आप संग लागा है॥

जैसे वास्तविक कर महाकाश में आना जाना नही बनता क्योंकि वह पहले ही जहां तहां पूर्ण है, फिर भी कोई घट वाला घटाकाश को या मठाकाश के मटके को उठा कर इधर उधर ले जा कर कहे कि मैं आकाश को इधर उधर ले जा रहा

हूँ, तो यह उनका भारी भर्म होगा। क्योंकि घड़े और मटके का आकार तो पूर्ण रूपता कर पहिले ही भरा हुआ है। आकाश में तो आना जाना हुआ ही नहीं, बल्कि मटके का आना जाना वो आकाश में मान रहा है। ठीक इसी प्रकार ब्रह्म परमात्मा आकाश वत अन्दर बाहर सर्वत्र पूर्ण है जिसने यह स्थूल सूक्ष्म आदि शरीर मटके की नियाई लोक परलोक में आ जा रहे हैं। अगर कोई कहे कि आत्मा भी शरीरों को नियाई आ जा रहा है, तो आत्मा का परमात्मा से अलग मानने का भर्म होगा। वास्तव में आत्मा का स्थूल सूक्ष्म शरीरों के उपाधी करके परमात्मा से भेद प्रतीत हो रहा है, बाकी कर्मों का फल भोगना चिदाभास सहित सूक्ष्म शरीर का धर्म है, कि जहां भी जावे उसे चेतनपना चिदाकाश रूप आत्मा से सहज मिलता रहता है। और स्थूल शरीर से जब तक सूक्ष्म शरीर का सम्बन्ध रहता है तब तक वो भी चलता फिरता प्रतीत होता है।

तातपिर्य यह कि जब तक इस जीव आभास को अपने आत्मा का यथार्थ ज्ञान नही होता तब तक वो परिछिन्न अन्तःकरण के साथ लोक परलोक में दर्पण की छाया वत भर्मण करता है। वास्तविक स्वरूप आत्मा में न जनम है न मृत्यु है। तब कहा है—

असां ना कहीं दे जाए हूं, जाए कहि न निपाए हूं।
माई बाप न साडा कोई, इहा गालह हैरत विच होई।
घट घट कीतुम सैर सभोई, सूरत साफ समाए हूं॥

प्रश्न—जब एक ही ब्रह्म सबका अपना आप वेहद भरपूर है, फिर मनुष्य अपने को लोक परलोक में आता जाता क्यूं मान रहा है?

उत्तर—वास्तव में आना जाना मन के संकल्प कर प्रतीत होरहा है। जैसे कोई मनुष्य मैदान में फेरी पाकर खड़ा हो जाए और कहने लगे कि यह सारा मैदान घूम रहा है, पर वास्तव में उसका सिर घूम रहा है। ठीक इस प्रकार मनुष्य का मन सारा दिन संकल्पों के चक्कर में फिर रहा है, पर भर्म वश मनुष्य कहता है कि आत्मा फिर रहा है। पर वेदान्त कहता है कि तुम्हारा आत्मा तो निर्मल आकाश वत अचल अडोल है, जिस में मन रूपी पक्षी जहां चाहे तहां स्वतन्त्र फिरता रहता है। जैसे आकाश में हवाई जहाज और राकेट आदि कितने भी ऊपर जाते हैं, तो भी आकाश का अन्त नहीं पा सकते। तैसे मन जितना भी चेतन चिदाकाश में दौड़े तो भी उसकी पूर्णता का अन्त नहीं पा सकता। तब कहा है—

देह अभमाने गिलते, विज्ञाते परमात्माने।
यत्र यत्र मनो जात, तत्र तत्र समाधे॥

अर्थात जिसका देह अभिमान मिट गया है और जिसने परमात्मा को अपने आत्मा में साक्षात्कार क्या है, ऐसे ममोक्षु का जहां जहां मन जाता है वहां वहां उनकी समाधी होती है। क्योंकि अब उस मन को जहां तहां चेतन चिदाकाश का अनुभव हो रहा है, उसके अन्दर से नाम रूप के संकल्प विकल्प मिट जाते है।

प्रश्न—जब हमारा आत्मा परमात्मा स्वरूप ही है, तो लोक परलोक में कौन जाता है ?

उत्तर—लोक परलोक में आना जाना जीव आभास का होता है। आत्मा का नहीं। जैसे सूर्य का प्रतिबिम्ब जो जल के

पात्र में पड़ता है, वो ही जल पात्र के साथ गमनागमन करता दिखाई देता है। परन्तु सूर्य तो सदा अपनो महिमा में स्थित रहता है। तैसे आत्मा रूपी सूर्य का प्रतिबिम्ब जीवाभास जिस अन्तःकरण रूपी पात्र में पड़ता है तिस अन्तःकरण के साथ गमनागमन कर लोक परलोक का भोगता वनता है। परन्तु चेतन आत्मा जो आकाश वत पूर्ण है उसका कभी भी गमना गमन नहीं होता। और जीव भी जब अपने आत्मा का साक्षात्कार कर लेता है, तव वो भी गमनागमन से मुक्त हो जाता है। इस लिए कहा है—

तीन गुणां से सभु जगु बांधा, चोथा गाँव हमारा।
नाम शहर का बेगम नगरी, मारा प्रेम नगारा॥
साधो वहाँ घर खेल हमारा॥

उदा०—एक समय नारद मुनि ने भगवान कृष्ण से पूछा कि आपकी १६१०८ पट रानियां है, क्या उन सबको दर्शन मिलता है। भगवान ने कहा क्यों नहीं। मैं सब जगह पहूँच जाता हूँ, अगर तुम्हे शंसय हो तो परीक्षा कर देखो। फिर तो कल को प्रातःकल होते ही नारद चल पड़ा। परन्तु जहां भी जावे वहां भगवान उससे पहले ही मौजूद था। नारद यह देखता हुआ आनन्द मगन हो गया, उसके सब शंसय संदेह मिट गए और कुछ बोल न सका। ठीक इसी प्रकार मन रूपी नारद अज्ञान वश ऐसा समझ रहा है कि आत्मा सारे संसार में कैसे व्यापक होगा ? परन्तु जब मन को जहां तहां एक चेतन आत्मा का अनुभव होने लगता है, तब बेहद ब्रह्म स्वरूप में उसकी सहज समाधि होती है। तब कहा है—

जिधर देखता हूं उधर तूं ही तूं है,
हर जाइ पे जलुवा तेरा हूबहू है ॥
गुलसतान में जा कर हर एक गुल को देखा,
तो तेरी ही रंगत और तेरी ही बू है ॥

वेदान्त कहता है कि ऐसे हद से रहित बेहद ब्रह्म स्वरूप को अपना आत्मा अनुभव करने अर्थ इन परिछिन्न मन इन्द्रियां आदकों की आवश्यकता नही है। क्योंकि जड़ बुद्धी आदकों को भी वहां से ही चेतनता ज्ञान मिल रहा है।

प्रश्न—आजकल कितने साइन्सदान अपने बुद्धि ज्ञान को नेचर वा जर प्रकृति के आसरे किस कारण मानते है ?

उत्तर—उन्हें बुद्धि ज्ञान से परे बेहद ब्रह्म स्वरूप का ज्ञान नहीं,हुवा है इसी कारण वो हद स परे शून्य प्रकृति को ही मानते हैं। संसार में आपको तीन प्रकार क लोग मिलेंगे, एक वह जो शरीर के हद जितना अपने को मानत है, दूसरे जो बुद्धि ज्ञान जीतना अपने को मानते है, तीसरे ब्रह्मवेत्ता हैं जो हद से परे बेहद ज्ञान स्वरूप अपने को अनुभव करते हैं। तब कहा है—

हद हद करते सब गये बेहद गया न कोइ।
हद बेहद के बीच में, रहा कबीरा सोइ ॥

कबीर साहब कहते हैं कि बहुत से लोग संसार में हद वाली कामनाओं को करते हुए यहां से निराश होकर चले गए।

और किन लोगों ने तो बेहद ब्रह्म स्वरूप को सुनते हुए भी भगवान को हद वाला ही माना परन्तु मैं तो हद बेहद के बीच में निश्चिन्त सोया हुआ हूँ। अर्थात मन इन्द्रियों के सम्बन्ध कर तो हद वाले पदार्थों को जानता हूँ और आत्म साक्षात्कार होने हद से परे बेहद ब्रह्म स्वरूप भी अपने को अनुभव कर रहा हुँ। यानि वे हद के अन्दर प्रवृति में दिखाई देते हुए भी बेहद में सदा निर्विकार निवृति रूप में स्थित हैं। तात्पर्य यह है कि आत्म वेता इस हद वाले देह में दिखाई देते हुए भी अपने को विदेह बेहद ब्रह्म स्वरूप में स्थित अनुभव करते हैं। इसी कारण वह शरीर त्यागने पर भी किसी लोक लोकान्तर में गमन नही करते, तब कहा है—

असंग वृति निर्भय ज्ञान
जीव भाव का भुलाओ ध्यान।
सर्वत्र देखो शुभ स्थान ॥

अर्थात असंग वृत्ति होने पर जब निज निवृत्ति स्वरूप का निर्भय ज्ञान होता है तब परिछिन्न अहं भाव मिट जाता है फिर सर्वत्र ब्रह्म धाम याने जहां तहां अपना ही बेहद स्वरूप निश्चय होने लगता है। यह अवस्था साधारण लोगों की वहिवार काल में कभी कभी होने लगती है। परन्तु उन्हें विश्वास नही होता।

उदा०—एक समय किसी माल गोदाम में कोई मजदूर अनाज की बोरियां-इतना तेजी से सी रहा था। जो उसे अपना आप ही याद नही था उसके हाथ सूए में सुतली डालते ही थे तो दूसरी बोरी उसके सामने आ जाती थी और आगे की बोरी

उठा ली जाती थी। वह ऐसा तलीन होकर काम कर रहा था, जो उसे थकावट तो किया पर उसे भूख प्यास भी याद नहीं थी जब दिन के दो बजने लगे तो उसका एक मित्र आ कर कहने लगा कि आज तुमने अभी तक रोटी नहीं खाई. दिन के दो बज गए है। सवेरे से तुमने पानी भी नही पिया. तुम्हारा सारा शरीर थक गया होगा। मित्र के ऐसे स्नेह पूर्ण वचनों को सुन कर वह परिछिन्न अहं भाव में आ गया तब उसे मित्र के कहे अनुसार भूख प्यास थकावट आदि सब अपने में भासने लगे फिर तो सारा काम काज छोड कर कहने लगा मेरे को बडी भूख लगी है प्यास लगी है; और मैं आराम करना चाहता हूँ। इस प्रकार वो मैं पने के हद में आ गया, और पहले जब बडी तेजी से काम कर रहा था, तब उसे वह सुफेती शक्ति हद के बाहर बेहद स्वरूप से मिल रही थी। अब वह हद के अहं-भाव में आ गया, उसें आलस्य ने घेर लिया है। ज्यादा काम नही कर सकता। तात्पर्य क्या है कि मनुष्य के भीतर से हद और वेहद दोनों प्रकार के कार्य होते रहते हैं जिनका उन्हें पूरा ज्ञान नही। अगर किसी से पूछा जाए कि आज आपने जो स्वप्न देखा वह किन आंखों से देखा और सुषोपत अवस्था में जो तुम्हें सुख मिल रहा था वो कैसे अनुभव किया। चाहे इसका उनक पास उत्तर नही भो हो तो भी हैं, उनके भीतर बेहद ब्रह्म स्वरूप का चमत्कार जिसे वह हद वाली बुद्धि से निश्चय नहीकर सकता। तब कहा है—

सूरत साफ अजूनो पाया, काया दाया दूर गंवाया,
हद कर चूर बेहद समाया, चिरया से फिर बाज हुआ।
श्री सतगुरु का समराज हुआ, दिल शाद आजाद हुआ॥

॥ ॐ तत्सत् ॥

मुक्त अवस्था

पा लिया जो था कि पाना, काम क्या बाकी रहा।
जानना था सोई जाना, काम क्या बाकी रहा॥

प्रश्न—ऐसे बेहद ब्रह्म स्वरूप का ज्ञान हमारे हद वाले हृदय में किस प्रकार प्रगट होगा ?

उत्तर—ब्रह्मवेत्ता महा पुरुषों के द्वारा वेदान्त का श्रवण मनन और निदयासन करने पर श्रद्धावान जिज्ञासु शीघ्रही परिछिन्नता से मुक्ती पा कर अनन्त में विश्राम पाता है।

प्रश्न—परमात्मा को अपने से जुदा मानने का कारण क्या है।

उत्तर—अज्ञान. जो मनुष्य अपने आत्मा और परमतामा के वास्तविक स्वरूप को जाने बिना ही उसकी खोज अपने से अलग करने लगता है। जैसे किसी को कहा जावे कि देवदत्त को बुला लावो। वो देवदत्त को पहचाने विना उसकी खोज में दूर से दूर चला जाये। परन्तु देवदत्त तो उसी घर में ही मौजूद था और उसे न जानने के कारण देखते हुए भी नही देखा। ठीक इसी प्रकार हमें वेद शास्त्र कहते हैं कि ईश्वर को

बुलाओ, वोशीघ्र मिल जाएगा, परन्तु हमें उसका ज्ञान न होने के कारण उसे दूर से दूर समझ कर कहां से कहां को ढूंढते हुए निराश हो जाते हैं। वास्तव में वो परमात्मा अपने आत्मा रूपी घर में ही मौजूद है, परन्तु आत्मा के ज्ञान विना हम उसे देखने हुए भी नहीं देखते। तब कहा है—

दिल्बर पास वसदा है, ढूंढणा किथे जावणा,
गली ते बजार ढूंढो, शहर ते बाहर ढूंढो।
घर घर हजार ढूंढों, पता नहीं पावणा॥

प्रश्न—जब ज्ञानी अज्ञानी का वास्तविक आत्मा एक ही परमात्मा है तो ज्ञानी अपने को मुक्ति और अज्ञानी अपने को बधायमान क्यूँ मानता है ?

उत्तर—असल में ज्ञानी अज्ञानी दोनों का आत्मा मुक्ति स्वरूप है, पर भ्रम वश अज्ञानी शरीरक शीत उष्ण धर्म, प्राणों के भूख प्यास धर्म, और मन के हर्ष शोक धर्मों को अपना मान कर बधायमान रहता है, और ज्ञानी अपने निज साक्षी असंग धर्म विषय स्थित रह कर जीवन मुक्ति विचरता है।

प्रश्न—धर्म और अधर्म का क्या स्वरूप है ?

उत्तर—पराए धर्मों को अपना धर्म मानना अधर्म है, और अपने वास्तविक स्वरूप में स्थित रहना परम धर्म है। जैसे शब्द सुपर्श रूप रस आदिक इन्द्रियों के धर्म है, हर्ष शोक मन का धर्म है, शरीर का जीवन चलाना प्राणों का धर्म है, और किसी विषय में निश्चय या अनिश्चय करना बुद्धि का धर्म है। इसी प्रकार अनेक धर्मों को अपने में मानने से मनुष्य

भारी वन्धनों को पाता है। इसी कारण भगवान ने गीता में अर्जुन को साफ कह दिया कि तू सम्पूर्ण शरीर मन इन्द्रियों के धर्मों को त्याग कर मेरी शरण याने मेरे वास्तविक स्वरूप में अभेद हो कर निर्भय हो जाओ। तत्र कहा है—

अपना आपमें आप गंवाके, ब्रह्म स्वरूप कहावे कौन।
देह धर्म दी दावा सुटके, इस रस्ते पर आवे कौन ॥
तत्वमसि कह वेद पुकारिन, सतगुरु सो तू साफ सुणावन।
जीवण ज़ादू डावे कौन ॥

प्रश्न—ज्ञानवान जब जीव भाव से मुक्त साक्षी आत्मा हो कर विचरता है, तब उनका बहिवार किस प्रकार होता है ?

उत्तर—वेदान्त कहता है जैसे ज्ञानवान की प्रवृत्ति पहले त्रपुटी द्वारा होती रहती थी, वैसे मुक्त अवस्था में भी होने लगती है।

प्रश्न—त्रपुटी किसे कहते हैं ?

उत्तर—ज्ञाता, ज्ञान ज्ञेय इन तीनों का नाम त्रपुटी है। अर्थात चेतन के प्रतिबिम्ब सहित बुद्धि का नाम ज्ञाता है। पांचों इन्द्रियों कर जो कुछ भी देखा सुना जाता है उसका नाम ज्ञान है और जिन स्थूल पदार्थों का ग्रहण त्याग होता है उसका नाम ज्ञेय है। इस प्रकार ज्ञानवान का ज्ञाता पना अन्तःकरण में शब्द स्पर्श आदकों का ज्ञान इन्द्रियों में ज्यों का त्यों बना रहता है, इसी कारण जगत के ज्ञेय पदार्थों के ग्रहण त्याग का वहि-वार स्वभावक होता रहता है।

प्रश्न—जीवन मुक्त ज्ञानवान को किन लक्षणों कर जाना जाता है ?

उत्तर—ज्ञानवान के लक्षण सुख समवेद हैं वह तीन गुणों से परे होते हुए भी प्रकृत्ति व्यवहार में विचरते दिखाई देते हैं। उनके लक्षणों को मानने वाला सुयं भर्म में पड़ जाता है। क्योंकि ज्ञानवान की प्रवृत्ति अन्तःकरण द्वारा होती है कभी उनके सात्वकी लक्षणों को देख लोक बड़ी उस्तत करने लगते है, कभी मन के रजोगणी प्रवृत्ति को देख कर बड़े आश्चर्य में पर जाते हैं, और कभी तामसी गुणों को देख कर भारी संशय संदेह करने लगते हैं। परन्तु ज्ञानवान सदा अपने को तीनों गुणों से अतीत अनुभव करता हुआ अपनी महिमा में स्थित रहता है, इस गुह भेद को साधारण लोग नहीं जानते। तब कहा है—

कोई भूला भोगे भोग, सत्य जान संसार को।
कोई जाने झूठ जगत को, साधे जप तप योग !
पर ज्ञानी रहें अरोग, दोनों की द्वन्ध्या से॥

अर्थात संसार में तीन प्रकार के लोग आपको दिखाई देंगे। एक भोगी, दूसरे योगी, तीसरे अरोगी। याने साधारण लोग जो दिन रात विषय वासनाओं में फंसे रहते हैं, वह भोगी और जो भोगों को दीरघ काल का रोग मान कर, जगत को झूठा जानकर, जप तप साधनों में लगे रहते हैं, उनका नाम योगी और जो आत्म साक्षात्कार के प्रभाव से मन इन्द्रयों की प्रवृत्ति,तथा निवृत्ति दोनों क्रियाओंसे अपनेको असंग अनुभव करते हैं वह अरोगी यानि जीवन मुक्त कहे जाते हैं। जैसे सूर्य सब

पदार्थों को प्रकाशता है और उनके संजोग वियोग में समान रहता है, तैसे ही मुक्त आत्मा ज्ञानवान अन्तःकर्ण को अपने साक्षी भाव से प्रकाशता हुआ, उन के ग्रहण त्याग से सदा असंग रहता है। तब कहा है—

समुझ लेओ मन मेरा, मैं असंग साहब हूं तेरा ।
चाहे तूं देव दानव बन जावे, चाहे तूं ब्रह्म लोक सुख लावे।
ये सबु कल्पित काया, चाहे नरक दुख घेरा ॥

प्रश्न---मुक्त अवस्था में ज्ञानवान कैसे अपने को अन्तःकर्ण के गुण सुभावों से शुद्ध, असंग अनुभव करता है ?

उत्तर—जैसे शुद्ध सफटक मणि अनेक रंगों वाले फूलों के बीच में रहती हुई और उनके लाल, पीले प्रतिबिम्बों को अपने में दिखाती भी आप शुद्ध साफ रहती है। तैसे ज्ञानवान अतःकर्ण के गुण सुभावों को अपने शुद्ध साक्षी रूप कर सिद्ध करता हुआ अन्दर बाहर सदा चेतन असंग भाव से चमकता रहता है। अर्थात उसमें जो मन कर मनोमय और बुद्धि कर बुद्धि मयपना दिखाई देता है, सो केवल प्रतिबिम्ब मात्र है। वेद की श्रुति भी कहती है कि ब्रह्मवित ब्रह्मभवती अर्थात ब्रह्मवेता ब्रह्मस्वरूप ही है। वह सदा अपने को दृष्टा रूप निश्चय कर, इस दृश्य रूप संसार में निरबंधन विचरता है।

प्रश्न—दृष्टा और दृष्य का क्या स्वरूप है ?

उत्तर—जानने वाले को दृष्टा और जानने में आने वाला को दृश्य कहा है। वह दृष्टा एक है और दृश्य अनेक हैं, जब

तक हम अपनी दृष्टा रूप को नहीं पहचाना तब तक दृश्य के साथ तदि रूप रह कर अनेक दृष्टियों से कई सम्बन्ध रूप सृष्टियें बनाते हैं। तब कहा है—

दृष्टा से दृष्टि भई, दृष्टि सृष्टि जान।
दृष्टि भिन्न दृष्टा लखे, ये ही पूर्ण ज्ञान॥

प्रश्न—जब दृष्टा चेतन और दृश्य जड़ है फिर दृष्टा दृश्य के साथ एक हो कर क्यूं भासता है ?

उत्तर—अविद्या के प्रभाव कर दृष्टा अपने को दृश्य से अलग जाने का यत्न नहीं करता। जब तक अविद्या की निवृत्ति नहीं होती तब तक दृष्टा देह अध्यास और कर्म फल भोगने में बंधाइमान रहता है। मानों दृष्टा दृश्य के अन्दर अपने को भुला बैठा है। इसी कारण सारा दिन जो भी दृश्य पदार्थ सामने आते हैं उनका ही मनन चिंत्वन करता रहता है। तब कहा है—

अविद्या के फंदे में हंस बंधाना अमर लोक किमजासी।
दृष्टा भूल दृश्य में आया, बन गया पांच पचासी॥

वो ही घर अपना भूल गयोप्राणी, जहां धर को हंस वासी।
उतों निरेबन्ध आइ बंधाना, पड़ो काल के फाँसी।
गुर पूरे बिन पार न पावे, गंगा नावे जाइ काशी॥

वेदांत कहता है जैसे दृष्टा कर दृश्य सिद्धि होते लगता है, तैसे दृश्य कर भी दृष्टा सिद्ध होता है यह एक गोपय रहस्य

है ! जैसे दर्पण के सन्मुख देखने से दर्पण तो दिखाई देता है पर साथ में आपका प्रतिबिम्ब भी उसो दरपण रूपी दृश्य में दिखाई देता है। इसी प्रकार संसार का जो भी दृश्य पदार्थ आप देखने लगते हैं तो उस वक्त आपका दृष्टा स्वरूप भी ज्यों का त्यों अनुभव होता है। परन्तु हम दृश्य की असक्ति मेंदृष्टा को भुला बैठे हैं, फिर भी दृष्टा दृष्टा ही है और दृश्य दृश्य ही रहता है। तब कहा है—

दृष्टा दृश्य न होत है, दृश्यि न दृश्टा मीत।
यह पक्का निश्चय धार कर, शोक न करणा चीत॥

प्रश्न—एसे दृष्टा स्वरूप को दृश्य से नियारा जानने से क्या फल होता है ?

उत्तर—जब दृष्टा दृश्य के सम्पूर्ण सम्बन्धों से अपने को स्वतन्त्र अनुभव करता है, तब मुक्त अवस्था का परम फल ज्ञान उदय होता है। वेदांत कहता है कि दृष्टा और दृश्य दुनियां रूपी तराजू के दो पलड़े हैं, अर्थात दृष्टा बिना दृश्य सिद्ध नहीं होता, और दृशय बिना दृष्टा भी अपनी महिमा को सिद्ध नही कर सकता। जैसे मन इन्द्रियों की प्रवृत्ति साक्षी कर सिद्ध होती है, तैसे साक्षी की असंगता मन इन्द्रियों के प्रवृत्ति कर सिद्ध होती है' यह एक अनुभव का विषय है। जिसमें बुद्धिमानो की बुद्धि दंग रह जाती हैं। तब कहा है—

यह बात है अटपटी, झट पट लखे न कोइ।
जब मनका खट पट मिटे, तब सहजे दर्शन होइ॥

संवत् १९७२ की बात है जब हमारे पूज्यपाद श्री समर्थ देव जी उत्तराखण्ड से कराची सिन्ध में गोरख आमरी पर पधारे थे, तब उन्हीं के अमृतमय वचनों से यह सम्बोधन मिलता था कि जब तुम और कुछ भी न बनोगे, तब बनी बनत जो दृष्टारूप तुम्हरा है, वो ही होकर रहना होगा। वास्तव में सब कल्पित पदार्थ तुम्हारे कर ही सिद्ध हो रहे हैं। सच्चा स्वतन्त्र जिज्ञासु वो ही है जो दृश्य के बोझ को अपने पर नहीं लादता। जैसे आपकी विशाल आँखें बड़े बड़े पर्वतों को देख कर उनके स्थूल आकारों को सिद्ध करती हैं, परन्तु अपने में उस पर्वत का राई जितना भी बोझ नहीं उठाती।

वैसे दृश्य जगत का सारा बोझ जगत पर रख कर आप अपने दृटारूप से सर्व व्यवहार स्वतन्त्रता से सिद्ध कर सकते हैं। तब कहा है—

जो कुछ देखो जगत में, सब अनुभव में ढांप।
करो चैन इस त्याग से, मोह लालच से कांप॥

प्रश्न— ज्ञानवान भी साधारण लोगों की तरह व्यवहार में प्रारब्ध अनुसार सुख दुःख को भोगता हुआ दिखाई देता है। फिर उसे मुक्त अवस्था में कैसे कहा जाए ?

उत्तर—ज्ञानी और अज्ञानी के व्यवहार में बाहर से कोई भेद दिखाई नहीं देता। जैसे अर्जुन और कौरवों के युद्ध में कोई भेद नहीं दिखाई देता था पर अन्तर करके अर्जुन मुक्त अवस्था में था और कौरव राग-द्वेष के भारी बंधनों में थे, तैसे ज्ञान-वान व्यवहार में अन्तर कर सदा मुक्त अवस्था में रहता हुआ

व्यवहार करता है। क्योंकि ज्ञानवान अपने को निजज्ञानस्वरूप अनुभव करता है। सुख दुःख को संकल्परूप ज्ञान और स्थूल संसार को आकृतिमय ज्ञान निश्चय कर सदा अपने आप में ही क्रीड़ा कर रहा है और अज्ञानी अन्दर बाहर जगत के भेद भाव को मानता, हर्ष शोक करता बधाइमान होता है। तब कहा है—

अज्ञानी और प्रज्ञ के, नही कर्मों में भेद।
दोनों में गुह भेद है, जो करे मोक्ष और खेद ॥

उदाहरण— एक दफा किसी जवाहरी ने अपने काम में साथी बनाने अर्थ वफादार नौकर को अपने पास रखा। जब कांम करना शुरू किया तब दोनों के पास एक जैसे जवाहरों से भरी हुई तसरीएं हाथों में थी। दोनों उनमें से लाल, पीले जवाहर हीरे सब अलग अलग करते जाते थे, परन्तु मालिक से नौकर बड़ी तेजी से काम कर रहा था, और जवाहरी जब एक एक जवाहर का दाना उठाता था तो किसी दाने को देख कर कि अभी इसका भाव बहुत गिर गया है जिसका उसके दिल में बड़ा शोक छा जाता था। और जो बाजार में बिकता ही नहीं था उसे बोझ सा देख कर बडा उदास होता था अथवा किस दाने को कीमत वढ़ गई है, तो थोडा हर्ष होता था। इस प्रकार जवाहरी के दिल में वडा संघर्ष हो रहा था। और नौकर के पास सिर्फ दो विकल्प थे। एक यह कि सायं काल होते ही काम न करूँगा। दूसरा नौकरी में जो कुछ मेहनत से मिलेगा, उससे गुजर करूँगा। ठीक इसी प्रकार ज्ञानी और अज्ञानी के

निश्चय में बड़ा भेद है अर्थात अज्ञानी प्रारब्ध भोग में मिले हुए पदार्थों का अपने को मालिक समझ कर हर एक पदार्थ के संयोग वियोग हानि, लाभ का हर्ष शोक कर व्याकुल रहता है, और ज्ञानवान अपने प्रारब्ध को एक पार्ट समझ कर उसे पूरा करता हुआ यह निश्चय रखता है कि एक तो इस देह के छूटने पर हम विदेह मुक्त हो जावेंगे। और दूसरा जो भी कर्मों का भोग सामने आएगा उसे पूरा करेंगे। इस प्रकार शरीर मन इन्द्रियों की प्रवृत्ति के बीच में रहता हुआ ज्ञानवान सदा अपने को अभोक्ता निवृत्ति रूप में अनुभव करता है।

प्रश्न—कितने ज्ञानवान व्यवहारिक अवस्था में हर्ष शोक करते हुए दिखाई देते हैं, वो क्यूँ ?

उत्तर—प्रारब्ध भोग ज्ञानवान में हर्ष शोक का आभास मात्र दिखाई देता है, पर इस कर ज्ञानवान की कोई हानि नहीं होती। जैसे बहरूपी को अनेक रूप धारण करने पर भी कोई हानी नहीं होती। जैसे दो आदमी अपने एक स्वर्गवासी सम्बन्धी के घर अपना शोक प्रकट करने अर्थ जा रहे थे, वो रास्ते में तो अनेक हास विलास करते आ रहे थे। परन्तु जब उस घर में प्रवेश किया तो दोनों ने ऐसा शोकात्र चेहरा बना लिया, मानो उन जैसा दुःख और किसी भी मित्र को न हुआ होगा, वास्तव में उन्ही को शोक का आभास मात्र था। इसी प्रकार आत्मवेत्ता में हर्ष शोक का जो आभास मात्र दिखाई देता है, वो किसी बन्धन का कारण नहीं होता। तब कहा है—

न गम दुनिया का है उनको, न दुनियां से किनारा है,
न अपने से मुहब्बत है, न नफरत गैर से उनको।
सभी में ज्ञात हक देखे, ये ही जिनका निजारा है॥

प्रश्न—ज्ञानवान को मुक्त अवस्था में स्थिर रहने के लिये किसी प्रकार के ध्यान साधन की आवश्यकता होती होगी ?

उत्तर—आत्म साक्षात्कार के प्रभाव से ज्ञानवान की जीवनमुक्त अवस्था दिनों दिन सहज ही बढ़ने लगती है। ऐसा आत्मवेत्ता चाहे अपने चित्त को एकान्त एकाग्र में रखे, चाहे शरीर निर्वाह अर्थ किसी कार्य को करे, अथवा अधिकारी जनों को ज्ञान का उपदेश करे, उनके लिये सब समान है।

प्रश्न—जीवन मुक्त को ऐसे निर्विकल्प अवस्था फिर कैसे प्राप्त होगी ?

उत्तर—निर्विकल्प समाधि में जो योगी अन्तःकरण के ध्याता ध्यान ध्येय रूप त्रपुटी को लय कर स्थिति होते है, उस अवस्था में ज्ञानवान चित्त के सम्पूर्ण प्रवृतियों के होते हुए भी सदा निर्विकल्प निवृत्ति रूप सहज समाधि में स्थित रहता है, उसे चित्त समाधि या मन समाधि की कोई आवश्यकता नही होती।

प्रश्न—फिर तो ज्ञानवान का चित्त अथवा मन सदा बाहर मुख हो जाएगा ?

उत्तर—ज्ञानवान ऐसी अन्तरमुख अवस्था में स्थित है, जहां उसे चित्त वा मन की कोई भी प्रवृत्ति स्पर्श नहीं कर सकती, वेद की श्रुति भी कहती है कि आत्मवेत्ता जिस पद में स्थित हुआ है वहां मन और बुद्धि नहीं पहुँच सकते, और न उस समरस अवस्था में कभी उत्थान ही होता है। तब कहा है—

जहां माहि समाधि उत्थान नही,
जहां ज्ञान अज्ञान समान सही।

जहां हम और तुम पुन ना मम है,
सुख रूप चिदात्म सोंहम है ॥

प्रश्न—ऐसे निर्विकल्प स्वरूप में स्थित रहने वाले ज्ञानवान की प्रवृत्ति फिर किस प्रकार होती होगी ?

उत्तर—वास्तव में ज्ञानवान में कोई भी प्रवृति नही होती और प्रवृति करने वाले जो मन बुद्धि इन्द्रिय आदिकहैं, वो आपो अपनी क्रियाओं को बड़ी सावधानी से करते रहते हैं, परन्तु आत्मवेता सदा साक्षी निवृतिरूप में स्थित रहता है। तब कहा है—

साभी सो सुल्तान जो बैठे अनुभव तखत पर।
मेटे मन की कलपना, जीते सब जहान ॥
होका फेरे हक का, न्याय करे नृवान।
सदा ही विद्यमान, देखे सार स्वरूप को ॥

अर्थात सच्चा सुलतान चक्रवर्ती राजा वही है, जो अपने अनुभव रूपी तखत पर सदा विराजमान रहता है, जिसने अनुभव में आने वाले पदार्थों पर विजय प्राप्त की है, याने जो कभी भी अनुभव होने वाली नाम रूप की कल्पनाओं के अधीन नही होता। जो सारे संसार को जीव ब्रह्म के एकता का संदेश सुना कर सच्ची स्वतन्त्रता का अधिकार दिलाता है, फिर चाहे वही किसी भी वर्णाश्रम में क्यूँ न हो, सो सदा अपने नित्य मुक्त निवृति रुप में स्थित रहता है। तब कहा है—

भोगी थे यदुराइ जी, भूप जनक रघुनाथ।
त्यागी थे शुक वाम दत, मुक्ती में सब साथ ॥

उदा०—योगवशिष्ट में महाराजा शखरध्वज और चूराला राणी का अद्भुत वृतान्त है, वह दोनों पति पत्नि एक महापुरुष के समीप उपदेश श्रवण करने जाते थे। परन्तु चूराला राणी को तो निज आत्मा का बोध हो गया और राजा शखरध्वज अभी तक वैराग अवस्था में ही था। वह एक समय अपने राज काज विषय भोगो को भारी बन्धन रूप जान कर रातों रात राज के सम्पूर्ण सुखों को त्याग कर किसी गहन वन में चला गया। वहां किसी नदी किनारे एकान्त में फूंस की कुटिया बना कर कंदमूल खाकर जीवन विताने लगा। जब महल में रानीं चुराला को ज्ञात हुआ कि राजा वैराग्यके कारण राज पाट छोड़ कर वन में चला गया है, तब उसने सोचा कि अध्यात्म ज्ञान के बिना राजा को कहीं भी शान्ति या परम सुख की प्राप्ती होना असम्भव है। इसलिए रानी राज का पूरा प्रवन्ध रख कर आप अपने पती की खोज में निकल पड़ी। जब एक गहन वन में नदी के किनारे राजा शखरध्वज को दूर से उदास चित्त बैठा हुआ देखा, तब चुराला रानी ने सोचा कि मैं राजा के सामने किसी और रूप को धारण कर जाऊँ। नहीं तो मेरे स्त्री रूप को देख कर राजा आश्रद्धा वश उस अध्यात्म ज्ञान को ग्रहण नहीं करेगा। तब चुराला ने ब्रह्मवेत्ता कुम्भ मुनि का रूप धारण कर जब राजा शखरध्वज के कुटिया पर आ पहुँची, तो राजा उसे बड़ा मुनीश्वर समझ कर उठखड़ा हुआ और बड़ी श्रद्धासे प्रणाम किया और एक आसन पर विठा कर कहने लगा कि आज मेरे बड़े भाग्य उदय हुए हैं, जो आप जैसे महापुरुषों का यहाँ शुभागमन हुआ है। अब कृपाकर मेरे को ऐसा उपदेश कीजिये जिसकर मेरा चित्तपरम शान्ति को प्राप्त हो। तब कुम्भ मुनि ने उत्तर दिया कि अब तक तुमने पूर्ण त्याग नहीं किया, इस लिए चित्त अशान्त रहता है

राजा शखरध्वज कहने लगा कि मैं बड़े राज सुख भोगों को दुःख रूप समझ कर छोड़ आया हूँ। जिस पर कुम्भ मुनि ने कहा कि वो राजा आदि स्थूल पदार्थ तो तुम्हारे थे ही नहीं, वो जैसे पहले थे तैसे अब भी प्रतिक्षण बदलते जा रहे हैं। इस लिए जो कुछ तुम्हारा है उसका त्याग करो। यह सुन कर राजा अपनी बनाई हुई त्रण कुटिया को आग लगा दी, और तुमने सोटी लंगोटी सब आग में स्वाह कर कहने लगा कि हे भगवन! जो कुछ मेरा था वह भी सब त्यागकर दिया कृपा कर मुझे उपदेशकरो तब कुम्भ मुनि कहने लगे कि यह तो तुमने अपना त्याग नहीं किया क्योंकि कुटिया पत्तों के झार को, सोटी वृक्ष के जर पार की और कोपीन सूत के तार की, उनको आग में जला कर अपने को त्यागी कैसे मानते हो। फिर तो राजा की बुद्धि दंग रह गई वह त्याग के आवेश में आकर अपने शरीर को भी अग्नि में जा कर स्वाहा करने के लिए उठा खड़ा हुआ परन्तु कुम्भ मुनि ने उसे रोक कर कहा कि ये शरीर भी तो पांच तत्वा का हैं, जो समय पर तुम्हारे से अलग हो जाएगा। इसे व्यर्थ नष्ट करने से आपकी वह नित्य उपदेश निर्भय ज्ञान, कहां से प्राप्त होगा? राजा बड़े आश्चर्य में पड़ कर कुम्भ मुनि को कहने लगा कि हे गुरु देव! तब अ प ही बताईए कि मैं किसका त्याग करूं? तब कुम्भ मुनि ने उत्तर दिया कि तुम इसी मैं का त्याग करो, जिसमें सब परीछिन्तो के स्वभाव भरे हुए हैं। जिसने तुम्हारे को नित्य असंग महा त्याग स्वरूप आत्मा से विमुख कर दिया है और तू अविद्यावश प्रकृति के एक एक पदार्थ को छोड़ने पर अपने को त्यागी वैरागी मान रहा है। इस प्रकार के त्याग की तो कहीं भी हद न आएगी। फिर चाहे बनवासी बनो, चाहे कंदराओं के विनासी बनो और चाहे तपस्या के घोर कष्टों को सहन करो।

तब कहा है ।

धर शीश जटा, मुख ऊर्ध्व भुजा, अंग भस्म लगावे ।
गांव के भीतर पांव न देवत, जंगल में फल फूल चबावे ॥
अम्बर त्याग दसंबर ओढत, मौन रहत बहु कष्ट सहावे ।
पर एक निजात्म बोध बिना, भवसागर को भ्रम नाहीं मिटावे ॥

कुम्भ मुनि कहने लगे कि तुम्हारा आत्मा ग्रहण त्याग की प्रवृत्ति से परे निज निवृत्ति रूप में सदा स्थित रहता है । ऐसे असंग आत्मा का साक्षात्कार करो । इतने बचन सुनकर राजा शखरध्वज इसी परिछिन्न मैं से परे अपने लक्ष्य स्वरूप में स्थत हो गया । तत्पश्चात कुम्भ मुनि के चरणों में गिर कर कहने लगा, कि हे प्रभु ! ऐसे ज्ञान अमृत पान करने अर्थ मेरे को अपने समीप सेवा में रहने की आज्ञा दीजिए, जिस से मेरा उद्धार हो ! क्योंकि जहां आप साथ हैं वह संताप कहां है । फिर तो आगे आगे चूरालारूपी कुम्भ मुनि और पीछे से परम श्रद्धावान राजा शखर-ध्वज, शिष्य के रूप में चलने लगा । जब गहन बन, पर्वत और तीर्थ स्थानों से विचरते हुए अपनी राजधानी के निकट आ पहुंचे तब शखरध्वज कहने लगा कि हे भगवान ! यह देश मेरा था और मैंने इसे त्याग किया था । अब इसमें मैं कैसे प्रवेश करूं । तब कुम्भ मुनि ने सावधान कर कहा कि जिस परिछिन्न मैं से तुम मुक्त हुए हो फिर उस मैं के आवेश में आकर ग्रहण त्याग के जाल में फंसना चाहते हो । शखरध्वज आत्म जागृती में आकर गुरु से क्षमा मांगने लगा, कि अब ऐसे मैं पने के अविद्यारूपी अंधकूप में फिर न गिरूंगा । राजधानी में कुम्भ मुनि के पीछे पीछे चलते हुए राजा शखरध्वज को रास्ते में अनेक अपने सुन्दर

स्थान देखने को मिले, और प्रजा वासी लोग फूलों की वर्षा करने लगे, अन्त में कुम्भ मुनि चुराला ने शखरध्वज को अपने राज दरबार में छोड़े हुए राज सिंहासन पर जाकर विराजमान किया, परन्तु राजा शखरध्वज किंचित मात्र भी चलायमान नहीं हुआ। अपने निजनिवृतिरूप आत्मअनुभव में स्थित होकर राज के प्रवृति रूप कार्य कर्म को आगे से भी सावधान हो कर चलाने लगा। जब महल में आकर कुम्भ मुनि को चुराला अपनी रानी के रूप में देखा तो उसका अपने पर महान उपकार मानता हुआ कहने लगा कि मेरे में अनेक जनमों से जो विपरीत भावना भरी हुई थी, जिस कर मैं अपने नित्य निवृति स्वरूप में भर्म वश मन इन्द्रियां की प्रवृति मान कर, भारी कष्टों को सहन कर रहा था। अब तुम्हारे ज्ञान प्रसाद को पाकर नित्य तृप्त स्वरूप को प्राप्त भया हूँ। जो इस राज प्रवृति में रहते हुए भी हर एक कार्य में अपने को मुक्त अवस्था में आकाश वत अनुभव कर रहा हूँ। अर्थात् जो कुछ भी मुझमें प्रतीत हो रहा है,मैं उनके जाननेहारा इनसे नियारा हूँ। तब कहा है—

बहता है पानी झर झर, चलती है हवा सर सर।
उडते हैं पक्षी फर फर, लड़ती है फौज मर मर॥
फिरते हैं जोगी दर दर, होती है पूजा हर हर।
मुझमें मुझमें मुझमें॥

जैसे आकाश में बादल गरजते हैं, पानी बरसता है, वायु के तूफान लगते हैं, पर्वतों से झरने बहते हैं, चारों तरफ पक्षी उड़ते हैं, कहीं फौजें लड़ती हैं। कहीं योगी समाधी करते

हैं, कहीं दरवेश दर दर फिरते हैं। इन सम्पूर्ण प्रवृतियों के होते हूए भी जैसे आकाश ज्यौं का त्यौं स्थित रहता है। वैसे जीवन मुक्त ज्ञानवान के चेतन चिदाकाश रूप में चाहे शरीर सारा दिन कर्म करता रहे; मन रूपी पक्षी संकल्प विकल्प से उडता रहे, वुद्धि विचार वल से कई प्रकार के सुवाल हल करते रहे, चाहे संसार के सुख दुःख रूपी बादल गरजते रहे, तो भी ज्ञान वान अपने को निर्मल आकाश वत अभोक्ता मुक्त अवस्था में अनुभव करता है, यही इस प्रवृति में निवृत्ति नामा पुस्तक के विचारने का परम फल है। तब कहा है—

जो हो रहा सो होने देओ, कुछ किसी को मत कहो।
स्वप्न की तलवार से, तुम जाग्रत निर्भय रहो॥
घोर निद्रा से जगाया, सद्गुरु ने बांह पकड़।
अन्दर परम आनन्द पाकर, बाहर का सब ही सहो॥

ओ३म् तत्सत ! आनन्द !! जय सच्चिदानद !!!

ज्ञानी का घर

ज्ञानी को जग नन्दन बन है, विचरत आनन्द धार ।
कल्पतरू हैं तर तंहिं सभही, गंगा जल सब वार ॥
सर्व क्रिया तांहि पुण्य रुप है, जो जो करे विहार ।
वाणी तांकी वेद ओमणि, अद्वैत अमृत सार ॥
सर्व काल 'परमानन्द' भासत, पंच कोश से पार ।

❀ भजन नं० १ ❀

ज्ञानी का घर दूर है हद से परे निज नूर है ।
जोगी,जती,साधक,तपी,वो मुनियों में मशहूर है ॥
१—जमानत जम की नही,चित का खफा सब चूर है ।
कर्म किंचित फल-विफल का कल्पना काफूर है ।
२—करना अमल वेदान्त का, गीता में दस्तूर है ।
अर्जुन को आया समझ वो ज्ञानयोगी शूर है ॥
३—निष्कामता के शान का, भारत को ही गरूर है ।
निर्लेपता, निर्पेखता, निज हर्षता में पूर है ॥
४—कलू में आत्म कला का, लाभ पाना जरूर है ।
'परमानन्द' गुरदेव का कहना हमें मन्जूर है ॥

ज्ञान भी मै हूँ

❀ भजन न० २ ❀

ज्ञान भी मैं हूँ, ध्यान भी मैं हूं,
हृदे अन्दर आन भी मैं हूँ !!

१— दाता मैं हूं, मंगता मैं हूं,
देवण वाला दान भी मैं हूं !

२—चेतन मैं हूं चिनितन मैं हूं,
इस्थर और घमसान भी हूं।

३—देव भी मैं हूं शेव भी मैं हूँ.
पूजा का सामान भी मैं हूँ !

४—साजन मैं हूँ शत्रु मैं हूं.
हर सूरत खैलान भी मैं हूं !

५—जाग्रत मैं हूं स्वप्न भी मैं हूं
दोनों का दर्मियान भी मैं हूँ !

६—आदि भी मैं हूँ अन्त भी मैं हूँ,
दो दिन का महिमान भी मैं हूं !

७—श्रोता मैं हूं वक्ता मैं हूं,
"परमानन्द" परमान भी मैं हूं !

प्रश्न–उत्तर

प्रश्न–१ प्रवृत्ति में निवृत्ति का निश्चय कैसे स्थिर हो ?

उत्तर— प्रातःकाल को उठते ही मैं शरीर नही हूँ, मैं मन इन्द्रियों से परे द्रष्टा स्वरूप हुँ ऐसा समझ कर वर्ताव करो।

प्रश्न–२ अगर ऐसा असंग भाव व्यवहार में न रह सके तो क्या करना चाहिए ?

उत्तर— कुछ काल एकान्त में ज्ञानयोग के निर्विकल्प अवस्था का अभ्यास करो।

प्रश्न–३ वास्तविक निर्भयता किसे कहे हैं ?

उत्तर— जैसे शेर की गरजना शेर को नहीं डरा सकती लोहे की तलवार लोहे की मूर्ति को नह काट सकती, और अग्नि की ज्वाला अग्नि को नही जला सकती। वैसे आत्म वेत्ता को मृत्यु रूपी शेर की गरजना कर्म रूपी तलवार की चिन्ता और राग द्वेष रूपी अग्नि तपायमान नहीं कर सकती।

प्रश्न–४ आत्म वेत्ता देह त्यागने पर किस अवस्था में रहता है ?

उत्तर—विदेह मुक्त ज्ञानवान अपने को पूर्ण ब्रह्म स्वरूप अनुभव करता हुआ परिछिन्नता के सब बन्धनों से स्वतन्त्र हो जाता है ॥ ॐ ॥

—०—

❋ आवश्यक सूचना ❋

प्रिय सज्जनो ! हमारा यह संकल्प रहा है कि श्री परम आनन्द भन्डार से समय २ पर प्रकाशित होने वाले अध्यात्मिक उन्नति के विषय पर हिन्दी और सिन्धी अनमोल पुस्तकों से सब भाई बहिनें लाभ उठाते रहें। इस लिए पुस्तकों की भेंट यथा योग्य यानी साधारण रखी गई है।

❋ मौजूद पुस्तकों की सूची ❋

	पुस्तक का नाम		मूल्य
१	मोक्ष द्वार	हिन्दी	३५ नया पैसा
२	आनन्द भन्डार	सिन्धी	७५ "
३	आत्म प्रकाश	सिन्धी	७५ "
४	जीवन यात्रा तथा आदर्शी जीवन चरित्र आत्म-दर्शी श्री सतचित परमानन्द जनोंका		१०० "
५	गृहस्थ में ब्रह्मचर्य	सिन्धी	४४ "
६	भजन आनन्द	सिन्धी	५६ "
७	पंचदश आदेश भजन आनन्द गुरमुखी सिन्धी		६२ "

पुस्तक मिलने का पता—

१ श्री परमानन्द भंडार, पो० कनखल, हरिद्वार

२ श्री परमानन्द भंडार, रोड नं० ११

खार बम्बई ५२।